

# ज्ञान मंजूषा

प्रकाशक : श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ,  
सरसावा

# ज्ञान मञ्जूषा

लेखक

श्री राजन स्वामी

प्रकाशक

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड़ रोड, सरसावा, सहारनपुर, उ.प्र.

[www.spjin.org](http://www.spjin.org)

सर्वाधिकार सुरक्षित

© २००६, श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट

पी.डी.एफ. संस्करण – २०१८

## प्राक्कथन

प्राणाधार श्री सुन्दरसाथ जी!

परम सत्य के साक्षात्कार की इच्छा मनीषियों में सदा से ही रही है। विभिन्न धर्मग्रन्थों में मनीषियों की यह प्यास यत्र-तत्र दिखायी पड़ती है। इस मायावी जगत् में जहाँ "मुण्डे-मुण्डे मतिः भिन्ना" की प्रवृत्ति है, वहाँ एकमत होना काफी कठिन प्रतीत होता है, फिर भी जाग्रत बुद्धि के ज्ञान से समीक्षा करने पर सभी मतों का एकीकरण हो जाता है और सभी धर्मग्रन्थों में छिपे हुए मोतियों को एकत्रित कर सत्य की माला बनायी जाती है।

इस छोटे से ग्रन्थ में श्रीमद्भागवत् के ४०, वेदान्त के १५, एवं वेद के २५ कठिनतम् प्रश्नों का समाधान करने का प्रयास किया गया है। मेरे जैसे अल्पज्ञ व्यक्ति

के लिये यह कार्य पूर्ण रूप से असम्भव था। अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी, एवं सद्गुरु परमहंस महाराज श्री राम रतन दास जी की अपार मेहेर, तथा सरकार श्री जगदीश चन्द्र जी की प्रेरणा से यह ग्रन्थ इस रूप में आपके कर कमलों मे प्रस्तुत है। आशा है यह ग्रन्थ आपकी अपेक्षाओं पर खरा उतरेगा। जाने-अनजाने होने वाली भूलों को क्षमा करते हुए सुधार की दिशा में यदि आप सूचित करेंगे, तो मैं अपने आपको धन्य समझूँगा।

**आपका**

**राजन स्वामी**

**श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ**

**सरसावा**

## विषय सूची

1	श्रीमद्भागवत् के ४० प्रश्न	7
2	वेदान्त के १५ प्रश्न	43
3	वेद के २५ प्रश्न	117

## "श्री राज श्यामा जी"

प्रथम लागूं दोऊ चरन को, धनी ए न छुड़ाइयो खिन।

लांक तली लाल एड़ियां, मेरे जीव के एही जीवन।।

युगों-युगों से मनीषियों ने परम् सत्य को जानने का प्रयास किया है। इस कड़ी में धर्मग्रन्थों के अनसुलझे रहस्य मानव मस्तिष्क के लिये चुनौती के रूप में उभरते रहे हैं। तारतम्य ज्ञान के अवतरित हो जाने के पश्चात् सभी धर्मग्रन्थों के रहस्यों का स्पष्टीकरण होना एक महान उपलब्धि है। अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी की छत्रछाया में श्रीमद्भागवत्, वेदान्त, और वेदों के कठिन प्रश्नों का उत्तर संक्षिप्त रूप में अब प्रस्तुत है—

## प्रथम अध्याय

### श्रीमद्भागवत् के ४० प्रश्न

#### (१) मोह क्या पदार्थ है?

उत्तर— प्रकृति का महाकारण स्वरूप ही मोह (महामाया, महाशून्य, अज्ञान, काल) है। इसी मोह सागर से जल के बुलबुलों की भांति करोड़ों ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति एवं लीन की प्रक्रिया चलती रहती है—

मोह अज्ञान भ्रमना, करम काल और सुंन।

ए नाम सारे नींद के, निराकार निरगुन।।

कलस हिंदुस्तानी २४/१६

जिसे नींद, अज्ञान, महाशून्य, निराकार—निर्गुण

कहते हैं, वह ही मोह या महाकाल है, जिसमें असंख्य ब्रह्माण्ड लीन होते रहते हैं।

इसके स्वरूप के सम्बन्ध में मनुस्मृति एवं ऋग्वेद में प्रकाश डाला गया है—

आसीत् इदम् तमोभूतम् अप्रज्ञातम् अलक्षणम्।

अतर्क्यम् अप्रमेयम् प्रसुप्तमिव सर्वतः॥

मनुस्मृति

अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होने से पूर्व अज्ञान रूपी अन्धकार से आवृत्त, अज्ञात, सभी लक्षणों से रहित, तर्क से न समझे जाने योग्य प्रसुप्त अवस्था में था।

नासदासीन्नो सदासीन्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत्।

किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गंभीरम्॥



ऋग्वेद १०/१२९/१

उस समय सृष्टि रचना से पूर्व न तो अव्यक्त (महत्तत्व) था और न व्यक्त जगत् था। उस समय नाना लोक भी नहीं थे। आकाश भी नहीं था। जो उससे भी सूक्ष्म है, वह भी नहीं था। उस समय कौन सा पदार्थ सबको चारों ओर से घेर सकता था? यह सब फिर कहाँ था और किसके आश्रय में था? तो फिर गहन और गम्भीर समुद्री जल (मोह तत्व) ही क्या था?

तम आसीत्तमसा गुढमग्रेप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।

तुच्छयेनाभवपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्॥

ऋग्वेद १०/१२९/३

सृष्टि के व्यक्त रूप में आने से पहले गूढ़ अन्धकार से आवृत्त तमस (मोह तत्व) था। लक्षणों में न आने

योग्य इस समस्त को व्यापे हुए गतिशील पदार्थ था, उस समय जो भी था, वह सूक्ष्म रूप से चारों ओर से ढका हुआ था।

श्रीमुखवाणी में मोह तत्व का स्वरूप इस प्रकार वर्णित किया गया है—

इहां आद अंत नहीं थावर जंगम, अजवास न कांई अंधार जी।

निराकार आकार नहीं, नर न कहेवाय कांई नार जी॥

नाम न ठाम नहीं गुन निरगुन, पख नहीं परवान जी।

आवन गवन नहीं अंग इंद्री, लख न कांई निरमान जी॥

इहां रूप न रंग नहीं तेज जोत, दिवस न कांई रात जी।

भोम न अगिन नहीं जल वाए, न शब्द सोहं आकास जी॥

इहां रस न धात नहीं कोई तत्व, गिनान नहीं बल गंध जी।  
 फूल न फल नहीं मूल बिरिख, भंग न कांई अभंग जी॥

किरंतन ६९/२-५

सांसारिक प्राणियों के लिए स्वप्न की बुद्धि द्वारा मोह तत्व की स्पष्ट व्याख्या सम्भव नहीं है, इसलिये श्रीमुखवाणी में कहा गया है—

पेड़ काली किन देखी नहीं, सब छाया में रहे उरझाए।  
 गम छाया की भी न पड़ी, तो पेड़ पार क्यों लखाए॥

कलस हिंदुस्तानी

**(२) मोह हुआ किसको?**

**उत्तर—** मोह आदिनारायण को ही होगा, अक्षर ब्रह्म को

कदापि नहीं। "एकोऽहम् बहुःस्याम" का संकल्प आदिनारायण का ही है, न कि अक्षर ब्रह्म का। अक्षर ब्रह्म अक्षरातीत के साक्षात् सत् अंग हैं। उन पर मोह से ग्रसित होने का प्रश्न ही नहीं है। श्रीमुखवाणी का कथन है कि "स्वरूप एक है लीला दोए।" अक्षर ब्रह्म के मोह से ग्रसित होने का तात्पर्य है, अक्षरातीत का मोह से ग्रसित होना, जो त्रिकाल में असम्भव है।

यद्यपि ब्रज में अक्षर की सुरता (चित्त वृत्ति) पर जरूर मोह का प्रभाव था। "ए दोऊ खेले सुपन की बुध", किन्तु यह लीला रूप में सुरता पर था। परमधाम में अक्षर ब्रह्म का जो स्वरूप है, उस पर मोह सागर का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। यदि अक्षर ब्रह्म और ब्रह्मसृष्टि अपने आवेश स्वरूप से खेल में आयें, तो उन पर कभी भी माया-मोह का असर नहीं होगा।

भगवान जी आए इत, जागवे को तत्पर।

हम उठसी भेले सबे, जब जासी हमारे घर।।

कलस हिंदुस्तानी

अक्षर ब्रह्म का मूल स्वरूप नित्य शुद्ध, बुद्ध, एवं जाग्रत है। उसके मन स्वरूप (अव्याकृत) के महाकारण (सबलिक के स्थूल) में स्थित सुमंगला पुरुष ही स्वयं को मोह सागर में स्वप्न में पाता है। वह ही आदिनारायण के स्वरूप में प्रकट होता है।

इत अक्षर को विलस्यो मन, पांच तत्व चौदे भवन।

यामें महाविष्णु मन मन थें त्रिगुन, तार्थें थिर चर सब उतपन।।

प्रकट वाणी ३७/२४

आदिनारायण (महा विष्णु) का मूल स्थान अव्याकृत का महाकारण या सबलिक का स्थूल सुमंगला

पुरुष है, अक्षर धाम नहीं। इसलिये साक्षात् अक्षर ब्रह्म के मोह से ग्रसित होने की बात अनुचित है—

प्रकृति पैदा करे, ऐसे कई इंड आलम।

ए ठौर माया ब्रह्म सबलिक, त्रिगुन की परआतम॥

किरंतन ६५/१०

तारतम्य ज्ञान से यह स्पष्ट है कि अव्याकृत पुरुष ही स्वप्न में स्वयं को आदिनारायण के रूप में देखता है और वह स्वप्न का स्वरूप ही मोह से ग्रसित होता है, न कि साक्षात् अक्षर ब्रह्म।

### (३) हिरण्यगर्भ रूप अण्ड क्या पदार्थ था?

**उत्तर—** शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मण में "हिरण्य" का अर्थ ज्योति या तेज किया गया है। इस प्रकार हिरण्यगर्भ

का अर्थ है, जिसके अन्दर ज्योति हो। वस्तुतः अक्षर ब्रह्म का मन अव्याकृत ही नींद रूपी मोह सागर में स्वयं को देखने लगा। उस स्वाप्निक मन को ही ज्योतिर्मय अथवा स्वर्णमय अण्ड कहा गया है।

**(४) उसके अन्दर चेतन तत्व किस स्थान से आया?**

**उत्तर-** जिस प्रकार स्वप्न की प्रक्रिया में मन की वृत्तियाँ स्थूल शरीर का रूप धारण कर लेती हैं तथा कारण शरीर का अंग (मन) महाकारण रूप जीव की चैतन्यता से ही कार्य करता है, उसी प्रकार सबलिक का स्थूल (अव्याकृत का महाकारण) ही चैतन्य रूप में कार्य करता है तथा स्थूल (प्रणव ब्रह्म) का नाम ही स्वप्न द्रष्टा का नाम हो जाता है। पुराण संहिता में इस विषय पर

अच्छा प्रकाश डाला गया है—

हृदयाकाश निलयात्प्रादुर्भूता सुमंगला।

निद्रामुत्पादयामास महामोहमयीं दृढाम्॥

तस्मिन्विमोह जलधावशेत पुरुषोमहान्।

तस्मादेव समुत्तस्थौ भूत्वा नारायणः स्वयं।

पञ्चावयवसंयुक्तः स एव प्रणवाभिधः॥

पु. सं. २४/२६, २८, २९

अक्षर ब्रह्म के हृदयाकाश (सबलिक) से सुमंगला शक्ति प्रकट हुई। उसने अत्यधिक मोहमयी नींद (मोहसागर) को उत्पन्न किया। उसमें अक्षर ब्रह्म के मन (अव्याकृत) ने शयन किया और आदिनारायण के रूप में प्रकट हुआ। पाँच अवयवों वाला वह ही प्रणव नाम से कहा गया है।



(५) अभी जल तत्व तो था नहीं, फिर सहस्र वर्ष तक सुवर्ण अण्ड पानी में तैरता रहा, तो वह पानी क्या पदार्थ था, जिसे जल करके लिखा है?

उत्तर— वह पदार्थ मोह तत्व ही था, जिसे जल (पानी) करके वर्णित किया गया है।

(६) वह जल कहाँ से प्रकट हुआ?

उत्तर— मोह रूपी वह जल अक्षर ब्रह्म के मन स्वरूप अव्याकृत के महाकारण में स्थित सुमंगला पुरुष के स्थूल रूप प्रणव ब्रह्म और रोधिनी शक्ति से प्रकट हुआ। पुराण संहिता में वर्णित इस प्रसंग को चौथे प्रश्न के उत्तर में लिखा जा चुका है।

(७) सृष्टि की आदि में इच्छा उत्पन्न हुई, ऐसा लिखा है, तो वह इच्छा क्या पदार्थ है?

उत्तर— उपनिषदों का कथन है— "सो अकामयत्, बहु स्याम् प्रजायेयेति" तथा "एकोऽयम् बहु स्याम"।

तैत्तरीयोपनिषद्

अर्थात् मैं एक हूँ। बहुत सी प्रजा उत्पन्न करूँ। उपनिषदों के इन कथनों में "कामना" पद का अर्थ इच्छा है। वेदान्त का कथन है कि "जन्मादि यस्य यतः", जिससे सृष्टि की उत्पत्ति, पालन, और संहार हो, वही ब्रह्म है। यह स्वाभाविक है कि जाग्रत अवस्था की इच्छा स्वप्न में भी प्रगट होती है। इसी प्रकार अक्षर ब्रह्म के मन स्वरूप अव्याकृत के स्वप्न स्वरूप आदिनारायण में भी सृष्टि सर्जन की इच्छा स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती

है, जो इस जगत में ब्रह्म की स्वायत्तिक लीला कही जा सकती है।

### (८) महत्तत्त्व का स्वरूप क्या है?

**उत्तर-** मोह तत्त्व प्रकृति का महाकारण स्वरूप है, जबकि महत्तत्त्व प्रकृति का सूक्ष्म स्वरूप। सांख्य वर्णित सत्व, रज, और तम की साम्यावस्था वाली कारण प्रकृति में विकृति से महत्तत्त्व का प्रकटीकरण होता है। सांख्य का कथन है कि "महदाख्यं कार्यं तत् मनः" अर्थात् मन, बुद्धि आदि महत्तत्त्व से ही प्रकट होते हैं। स्पष्ट है कि मन+बुद्धि+अहंकार जीव के कारण शरीर के अन्तर्गत आते हैं। चूँकि प्रकृति का कारण और महाकारण स्वरूप अत्यन्त अव्यक्त होता है, इसलिये महत्तत्त्व से ही

इस कारण शरीर की उत्पत्ति माननी पड़ेगी।

(९) महत्तत्त्व निराकार है या साकार?

उत्तर- निराकार।

(१०) अहंकार का स्वरूप क्या है?

उत्तर- महत्तत्त्व में स्थूलता आने से अहंकार की रचना होती है। यह भी निराकार ही है। वैशेषिक दर्शन ४/१२६ का कथन है- "सत्यपि द्रव्यत्वे महत्तत्त्वे रूप संस्काराभावाद् वायोरनुपब्धिः" अर्थात् महत् से उत्पन्न होने वाले अहंकार में रूप और संस्कार नहीं होता।

(११) यदि अहंकार रूप रहित है, तो फिर कैसा है?

**उत्तर-** प्रकृति, महत्तत्व, और अहंकार अविशेष कहलाते हैं। इनका रूप नहीं होता। रूपादि की उत्पत्ति तब होती है, जब महत् से अनेक परिणाम बनकर, वायु से उनमें गति द्वारा परिमण्डल बन जाते हैं। वस्तुतः परमाणु रूप से रहित होते हैं।

(१२) महदादि तत्वों के स्वरूप क्या हैं?

**उत्तर-** महत्तत्व, अहंकार, आकाश, तथा वायु का स्वरूप सूक्ष्म तथा निराकार है। इसके विपरीत अग्नि, जल, तथा पृथ्वी स्थूल एवं साकार तत्व हैं।

(१३) तत्वों से विराट् किस प्रकार बना?

**उत्तर-** ऐतरेय उपनिषद् का कथन है – "तस्माद्वा एतस्माद् आकाशः सम्भूतः। आकासाद् वायुः वायोः अग्निः अदभ्यः पृथ्वीः। पुरुषः वा एषः अन्न रसमयः"।"

अर्थात् महत्तत्त्व से अहंकार एवं अहंकार से क्रमशः आकाश, आकाश से वायु, तथा वायु से अग्नि, एवं अग्नि से जल, और जल से पृथ्वी तत्व की रचना हुई।

सर्वप्रथम आकाशस्थ वायु द्वारा अग्नि तत्व प्रकट हुआ, जिससे निहारिकाओं (आकाश गंगाओं) की उत्पत्ति हुई। प्रत्येक आकाशगंगा से करोड़ों तारे, ग्रह, और नक्षत्र प्रकट हो गये। शीतलता एवं स्थूलता बढ़ने से दहकते हुए नक्षत्रों पर जल एवं पृथ्वी तत्व की रचना हुई। यही सृष्टि सर्जन का इतिहास है।

## (१४) यह विराट नीचे है कि ऊपर? कहाँ पर है?

**उत्तर-** मानवीय बुद्धि की दृष्टि में कालमाया के ब्रह्माण्ड का विस्तार अनन्त है। यदि हम चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड को एक विराट मानें, तो हमारे चौदह लोकों जैसे असंख्य चौदह लोक इस कालमाया के ब्रह्माण्ड में स्थित हैं। किन्तु, यदि हम सभी चौदह लोकों को एक विराट मानें, तो इसे घेरकर कारण प्रकृति (सात शून्य) और महाकारण अव्यक्त प्रकृति (मोह तत्व, महाशून्य) आये हैं, इसलिये इस विराट को ऊपर या नीचे स्थित होने का भाव न लेकर यह समझना चाहिए कि महासागर से उठने वाले जल के बुलबुलों की भांति चौदह लोकों के ब्रह्माण्ड स्थित हैं। "सून्य थें जैसे जल बतासा, सो सुन्य मांझ समाई।" (किरंतन)

(१५) इस प्रतिबिम्ब समान जगत का मूल बिम्ब कहाँ पर है?

उत्तर— अव्याकृत (अक्षर के मन) में।

(१६) निराकार क्या पदार्थ है?

उत्तर— "निर्गत् आकारः सः निराकारः" अर्थात् आकार से रहित पदार्थ ही निराकार है।

(१७) प्रतिबिम्ब किस वस्तु में पड़ा है?

उत्तर— अक्षर का मन स्वरूप अव्याकृत इस कालमाया के ब्रह्माण्ड के रूप में प्रतिबिम्बित हुआ है, जैसे अव्याकृत का महाकारण पुरुष मोहसागर में आदिनारायण के चैतन्य रूप में प्रतिबिम्बित हुआ,



जिसका स्थूल रूप प्रणव का रूप है। अव्याकृत के कारण में स्थित सात शून्य उसी रूप में कालमाया में प्रतिबिम्बित हुए तथा अव्याकृत में स्थित काल निरंजन महत्त्व के रूप में प्रतिबिम्बित हुआ।

(१८) इस विश्व का द्रष्टा कहाँ पर है?

उत्तर— इस विश्व का द्रष्टा अक्षर ब्रह्म है, जो अक्षरधाम में विराजमान है।

(१९) वह साकार है या निराकार है?

उत्तर— वह न तो साकार है और न ही निराकार, बल्कि दोनों से भिन्न त्रिगुणातीत, शब्दातीत, नूरमयी, किशोर, और शुद्ध स्वरूप वाला है।

(२०) ब्रह्म में माया तीनों काल में नहीं है , फिर यह जगत कहाँ से प्रगट हुआ? यदि विश्व में ब्रह्म को व्यापक मानें, तो फिर ब्रह्म माया से पृथक कैसे?

उत्तर— यद्यपि ब्रह्म के अन्दर माया तीनों काल में नहीं है, फिर भी इस मायावी जगत की उत्पत्ति का कारण अव्याकृत के महाकारण में स्थित सुमंगला पुरुष का स्वप्न है। ब्रह्म का निज स्वरूप तो इस मायावी जगत से सर्वथा पृथक है। यद्यपि उसकी सत्ता इस जगत के कण-कण में अवश्य व्यापक है। यजुर्वेद का यह कथन इसी तथ्य की ओर संकेत करता है— "ईशावास्यम् इदं सर्वम् यत्किंच जगत्यां जगत" अर्थात् यह जो कुछ भी जड़ रूप जगत है, ब्रह्म की सत्ता सबमें व्यापक है।

(२१) यदि ब्रह्म साकार है, तो उसका स्वरूप, धाम आदि कहिए। यदि वह निराकार है, तो उसे स्वप्नदशा नहीं हो सकती?

उत्तर— साकार और निराकार प्रकृति के स्वरूप हैं, ब्रह्म के नहीं। धर्मग्रन्थों में जहाँ भी ब्रह्म के स्वरूप का निषेध किया गया है, वह पञ्चभौतिक या प्राकृतिक शरीर का निषेध है, न कि दिव्य, नूरमयी (शुक्रमयी), तथा अखण्ड स्वरूप का।

यजुर्वेद अध्याय ४० में कथन है कि "स परिअगात् शुक्रम अत्रणम् अस्नाविरम शुद्धम् अपापविद्धम्" अर्थात् वह ब्रह्म पञ्चभौतिक शरीर, नस-नाड़ी से रहित, निष्पाप, शुद्ध, तथा नूरमयी स्वरूप वाला है। वह निराकार इसलिए नहीं है, क्योंकि उसे वेद में "रुचिः असिः रोचो असि" (अथर्व), अर्थात् कान्तिमान तथा

मनोहर कहा गया है। वह "ज्योतिषां ज्योतिः" अर्थात् ज्योतियों की भी ज्योति है। अतः वह साकार तथा निराकार से भी भिन्न अलौकिक स्वरूप वाला है।

(२२) क्षर, अक्षर, और अक्षरातीत इस प्रकार पृथक-पृथक तीन ब्रह्म कहने का क्या प्रयोजन है?

उत्तर- प्रेम की लीला और सत्ता की लीला में विरोधाभास है। इसी प्रकार सत् की लीला तथा उसके स्वप्न की लीला भी विपरीत है। इस तरह लीला भेद से तीन पुरुषों- क्षर (स्वप्नमयी), अक्षर (अखण्ड अद्वैत), तथा अक्षरातीत (अनन्य प्रेममयी स्वलीला अद्वैत)- का स्वरूप माना गया है।

(२३) क्षर, अक्षर, और अक्षरातीत का पृथक-पृथक निर्देश कर पुनः ब्रह्म को "एकमेवाद्वितीयं" कहने का क्या आशय है?

उत्तर- अक्षर ब्रह्म तो अक्षरातीत के सत् अंग हैं, और क्षर (आदिनारायण) अक्षर के मन (अव्याकृत) के स्वप्न स्वरूप हैं। सत्+चित्+आनन्द = सच्चिदानन्द के लक्षण एकमात्र अक्षरातीत में ही घटित होते हैं, इसलिये वे ही पूर्ण ब्रह्म कहे जाते हैं। उनके समान न कोई दूसरा था, न है, और न होगा। ऋग्वेद का यह कथन इसी सन्दर्भ में कहा गया है-

न त्वावां अन्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।

(२४) पाँच तत्व, तीन गुण, चतुर्दश भुवनात्मक यह विश्व प्रकृति-पुरुष पर्यन्त प्रलय में मिट जाता है, फिर

## श्री कृष्ण रूप ब्रह्म कहाँ पर बने रहते हैं?

**उत्तर-** परब्रह्म के आवेश से युक्त जो ब्रज लीला ११ वर्ष ५२ दिन कालमाया के ब्रह्माण्ड में तथा रासलीला केवल ब्रह्म में खेली गयी थी, वह सबलिक के कारण तथा महाकारण में अखण्ड है। इस प्रकार महाप्रलय के पश्चात् भी श्री कृष्ण जी के ये दोनों स्वरूप अखण्ड लीला-विहार करते रहते हैं।

**(२५) ब्रह्म को इच्छा रहित और माया को इच्छा युक्त क्यों वर्णन किया गया है?**

**उत्तर-** न्याय दर्शन के अनुसार सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष, तथा प्रयत्न जीव के लक्षण हैं, निर्विकार ब्रह्म के नहीं। चैतन्य जीव माया (प्रकृति) से संयुक्त होकर ही

लौकिक इच्छायें करता है। अपनी शुद्ध अवस्था में वह मायाजनित कोई भी इच्छा नहीं करता। इस प्रकार लौकिक इच्छा माया का गुण है, ब्रह्म का नहीं।

वेदों में ब्रह्म को लौकिक कामनाओं से सर्वथा रहित कहा गया है- "अकामो धीरो अमृतः स्वयं भू रसेन तृप्तः न कुतश्चनोनः" (अथर्व १० / ८ / ४४) अर्थात् वह परब्रह्म लौकिक कामना से रहित, धीर, आनन्दमयी रस से तृप्त पूर्णकाम है। उसमें किसी भी प्रकार की न्यूनता नहीं है। इच्छा तो वही करेगा, जिसे कोई वस्तु प्राप्त न हो।

**(२६) फिर ब्रह्म को इच्छा हुई, ऐसा भी लिखा है। परस्पर विरुद्ध ये बातें किस प्रकार सत्य हैं?**

**उत्तर-** तैत्तरीयोपनिषद् का कथन है कि "सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म" अर्थात् ब्रह्म सत्य स्वरूप, ज्ञानमय, और अनन्त शक्ति वाला है। "तस्य स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रिया च" अर्थात् उसमें ज्ञान और शक्ति की क्रिया स्वाभाविक रूप से होती है। सृष्टि की उत्पत्ति, पालन, और प्रलय की प्रक्रिया इच्छा के बिना सम्भव नहीं है, किन्तु वह इच्छा लौकिक न होकर दिव्य इच्छा है और उसे ब्रह्म लीला के अन्तर्गत माना जाता है। इसलिये ब्रह्म को इच्छा से रहित भी कहते हैं तथा इच्छा वाला भी कहते हैं।

(२७) रास लीला के समय श्री कृष्ण जी ने योगमाया का आश्रय लिया, ऐसा भागवत में लिखा है, तो योगमाया क्या पदार्थ है?



**उत्तर-** जहाँ अखण्ड ब्रह्म (शक्तिमान) अपनी अखण्ड शक्ति (माया) के साथ लीला कर रहा हो, उसे योगमाया कहते हैं। पुराण संहिता में इसका स्पष्ट वर्णन किया गया है।

**(२८) सर्वशक्तिमान ब्रह्म स्वरूप श्री कृष्ण ने योगमाया का आश्रय क्यों लिया?**

**उत्तर-** श्री कृष्ण जी के स्वरूप में विराजमान परब्रह्म का आवेश अक्षर की आत्मा को परमधाम की प्रेम लीला दिखाना चाहता था, जिसके लिये कालमाया की मायावी भूमिका उपयुक्त न थी, इसलिये परब्रह्म के आवेश ने आनन्द योगमाया (केवल ब्रह्म) की भूमिका में प्रवेश किया।

(२९) ब्रज और रास को अखण्ड वर्णन किया है, तो महाप्रलय में ये किस प्रकार से अखण्ड बच जाते हैं? रास रात्रि को अखण्ड करके लिखा है। जब रात्रि के बाद पुनः प्रातःकाल हुआ, तो रास रात्रि पुनः किस प्रकार अखण्ड बनी रही?

उत्तर— ब्रज और रास की लीला सबलिक के कारण और महाकारण में है तथा इसका प्रतिबिम्ब अव्याकृत के महाकारण में है। महाप्रलय की पहुँच केवल मोहतत्व तक है। इस प्रकार योगमाया के ब्रह्माण्ड में ब्रज-रास होने के कारण ये अखण्ड हैं। परमधाम की आत्माओं तथा कुमारिकाओं के रास में पहुँचते ही कालमाया का यह ब्रह्माण्ड महाप्रलय में लीन हो गया। लीला के अखण्ड हो जाने के पश्चात् कालमाया का यह ब्रह्माण्ड पहले जैसा ही (हूबहू) बन गया, जिसमें प्रतिबिम्ब की लीला की गयी।

इसी ब्रह्माण्ड में रास रात्रि के बाद प्रातःकाल हुआ। योगमाया की अखण्ड रास में तो आज भी रात्रि ही है, जो अनन्त काल तक बनी रहेगी।

(३०) रास लीला के समय गोपियों के चले जाने पर भी उन्हें ढूँढने के लिये कोई नहीं निकला और न गोपियों के पैरों के चिन्ह ही मिले। इसका कारण क्या था?

उत्तर— महाप्रलय में लीन हो जाने के कारण जब यह संसार था ही नहीं, तो उन्हें कौन ढूँढता और उनके चरण—चिह्न कैसे मिलते।

(३१) "जहुर्गुणमयं देहं सद्यं प्रक्षीण बन्धनाः।"  
तत्काल त्रिगुणात्मक शरीर का परित्याग कर गोपियाँ जब

श्री कृष्ण जी से मिलीं, तो उन्होंने किस शरीर से रास रमण किया?

उत्तर— योगमाया के त्रिगुणातीत एवं अखण्ड, नूरमयी शरीरों से रास लीला की।

(३२) प्रलय के बाद वैकुण्ठ कहाँ पर बना रहता है?

उत्तर— अव्याकृत के महाकारण में।

(३३) प्रलय के समय नारायण का श्वेत द्वीप में निवास करना लिखा है, तो वह श्वेत द्वीप कहाँ पर है जिसका प्रलय में भी नाश नहीं होता है?

उत्तर— सबलिक के स्थूल (अव्याकृत) के महाकारण में श्वेत द्वीप स्थित है, जिसका महाप्रलय में भी नाश नहीं

होता है।

(३४) प्रलय के समय वेदों ने भगवान को प्रबोधित किया, ऐसा लिखा है, और प्रलय में वेदों का नाश होना भी लिखा है। तब कौन से वेदों ने भगवान को प्रबोधित किया?

उत्तर— अव्याकृत के स्थूल में वेदों का अखण्ड स्थान है, जिसका महाप्रलय में भी लय नहीं होता है। इन्हीं (अखण्ड) वेदों ने भगवान को प्रबोधित किया था।

(३५) वेदों ने कहाँ पर जाकर भगवान को प्रबोधित किया?

उत्तर— अव्याकृत के महाकारण में जाकर।

(३६) क्षुभित होना माया का धर्म है, परन्तु ब्रह्म के बिना माया क्षुभित नहीं हो सकती है। यदि ब्रह्म और माया स्वरूप से रहित हैं, तो क्षोभ किस प्रकार हुआ?

उत्तर— यद्यपि कारण प्रकृति निराकार है , किन्तु परमाणुओं का अथाह सागर है। कूटस्थ अक्षर ब्रह्म का स्वरूप त्रिगुणातीत तथा नूरमयी है। चारों विभूति पादों (अव्याकृत, सबलिक, केवल, तथा सत् स्वरूप) का भी स्वरूप नूरमयी ही है।

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् , नान्यत्किञ्चन्मिषत् स ईक्षत् लोकान्नु सृजा इति।"

सृष्टि से पूर्व एकमात्र ब्रह्म ही था। उसने ईक्षण किया कि मैं लोकों का निर्माण करूँ। यह ईक्षण पद माया में क्षोभ प्रकट करने के भाव में किया गया है। ब्रह्म के

संकल्प से शान्त परमाणुओं के सागर में क्षोभ पैदा होता है, जिससे उसमें गति आ जाती है। यह कम्पन की प्रक्रिया ही सृष्टि रचना को जन्म देती है, जिसमें सबसे पहले स्थूलीकरण द्वारा महत्त्व, तत्पश्चात् अहंकार की उत्पत्ति होती है।

(३७) भगवान ने स्वयं कहा है कि परमात्मा की सेवा, भक्ति करने वाले निरपेक्ष भक्तगण मेरी दी हुई चारों प्रकार की मुक्ति नहीं चाहते, तो मुक्ति से भी अधिक सेवा और भक्ति का फल क्या है?

उत्तर— अपने प्रियतम का अनन्य प्रेम।

(३८) भागवत में स्वमुख से भगवान ने ही वर्णन किया

है कि "मेरा धर्म नाना मतों से प्राप्त नहीं होता है। वेद , तप, तीर्थ, यज्ञ, तथा जप से मैं प्राप्त नहीं होता और न श्रवण, कीर्तन से ही मैं प्राप्त होता हूँ।" तब मुक्ति का फिर क्या उपाय रह गया?

उत्तर— गीता में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्तु अनन्यया " अर्थात् वह परब्रह्म अनन्य प्रेम लक्षणा भक्ति द्वारा प्राप्त होता है , जो नवधा आदि सभी प्रकार की उपासना पद्धतियों से भिन्न है। अखण्ड मुक्ति की प्राप्ति भी इसी अनन्य प्रेम द्वारा होती है।

(३९) भगवान ने यह भी कहा है कि जितने प्रिय मुझे परमहंस लगते हैं, उतने प्रिय ब्रह्मा, शंकर, लक्ष्मी, शेष,



और मेरी आत्मा भी नहीं है। उन (परमहंसों) की चरण-रेणु से पवित्र होने के लिये, मैं उनके पीछे-पीछे फिरा करता हूँ। तो वे परमहंस कौन से हैं, हो गये, या होंगे, जो भगवान को अपनी आत्मा से भी अधिक प्रिय हैं और जिनकी पाद-रेणु भगवान को भी वांछित है?

उत्तर- सच्चिदानन्द परब्रह्म की अँगरूपा आत्मायें (ब्रह्मप्रियायें) ही वे ब्रह्ममुनि या परमहंस हैं, जिनकी चरण-धूलि की इच्छा स्वयं भगवान करते हैं। ये ही आत्मा रूप ब्रह्ममुनि व्रज की लीला में गोपियों के तनों में थे, पुनः रास में गये, तथा इस २८वें कलियुग में अपने प्रियतम अक्षरातीत के साथ पुनः प्रकट हुए हैं।

आनन्दरूपा याः सख्यो व्रजे वृन्दावने स्थिताः।

कलौ प्रार्दुभविष्यन्ति पुनर्यास्यन्ति तत्पदं॥

## बृहद्सदाशिव संहिता

अक्षरातीत की वे आनन्द स्वरूपा आत्मार्यें, जो ब्रज तथा रास की लीला में थीं, वे पुनः कलियुग (२८वें) में प्रकट होंगी तथा ब्रह्मवाणी के ज्ञान से जाग्रत होकर निजधाम जायेंगी।

(४०) कपिल तथा देवहूति के संवाद में लिखा है कि प्रकृति-पुरुष से परे पुरुष रूप ब्रह्म की मैं बार-बार वन्दना करता हूँ, तो वह पुरुष रूप ब्रह्म कौन है?

उत्तर- कूटस्थ अक्षर ब्रह्म।

श्रीमद्भागवत् के ४० प्रश्नों का उत्तर समाप्त हुआ।

## वेदान्त के १५ प्रश्न

तारतम्य ज्ञान की दृष्टि से वेदान्त के १५ प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में इस प्रकार हैं।

(१) यदि तुम ब्रह्म को निराकार मानते हो , तो "निराकार स्वरूप" क्यों कहते हो?

**उत्तर-** निराकार का तात्पर्य है "निर्गत आकारः स निराकारः" अर्थात् आकार से रहित पदार्थ निराकार कहा जाता है। वेद, उपनिषद् आदि ग्रन्थों में ब्रह्म को ज्योतिर्मय कहा गया है-

तद् शुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः यद् आत्म विदो विदुः।

मुण्डकोपनिषद् २/२/९/४१

अर्थात् वह ब्रह्म शुभ्र (नूरमयी, अति सुन्दर ,

अलौकिक) है, ज्योतियों का भी ज्योति है , जिसे ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं आदित्यवर्णः तमसस्परस्तात्।

यजुर्वेद ३१/१८

अर्थात् प्रकृति के अन्धकार से परे सूर्य के समान प्रकाशमान, उस सर्वोपरि महान परम पुरुष को ही मैं परमात्मा के रूप में जानता हूँ।

ज्योतिर्मय तथा सूर्य के समान प्रकाशमय किसी भी वस्तु को रूप से रहित नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार यदि दोपहर के समय सूर्य को न देखकर केवल प्रकाश को ही देखा जाये, तो चारों तरफ प्रकाश ही प्रकाश के दिखायी देने से उसकी कोई भी आकृति यद्यपि नहीं बन पाती, फिर भी हम उसे रूप से रहित

नहीं कह सकते। रूप से रहित तो अन्धकार होता है। योगियों ने ब्रह्म के प्रकाश को देखकर प्रकाशमान तो कहा, किन्तु सर्वव्यापक मानने के कारण निराकार कह दिया, जिस प्रकार व्यापक प्रकाश-स्रोत सूर्य एक आकृति रखता है, उसी प्रकार प्रकाशमान ब्रह्म भी अति सुन्दर आकृति रखता है, जिसे वेदों में इस प्रकार कहा गया है—

तमेव विद्वान न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्।

अथर्व १०/८/४४

उस धीर, वृद्धावस्था से रहित नित्य तरुण (युवा) परब्रह्म को जानकर विद्वान पुरुष मृत्यु से नहीं डरता है। यद्यपि ब्रह्म को "अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात्" (वेदान्त ३/२/१४) कहा गया है, किन्तु आगे के सूत्र में उसे

प्रकाश स्वरूप, "प्रकाशवच्चवैयर्थ्यात्" (वेदान्त ३/२/७५) कहा गया है। मुण्डकोपनिषद् ३/१/३/४६ में तो उसे स्पष्ट रूप से रुक्म वर्ण (स्वर्ण की तरह चमकते हुए वर्ण वाला) कहा गया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वेदोक्त उस प्रकाशमान ब्रह्म को मनीषियों ने अपने चिन्तन के आधार पर ही निराकार स्वरूप कहा है, किन्तु चारों वेदों में ऐसा कोई भी शब्द नहीं है, जिसका अर्थ निराकार होता हो। "स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणं" (यजुर्वेद ४०/८) में ब्रह्म को अवश्य शरीर और नस-नाड़ी से रहित कहा गया है, किन्तु उसका भाव त्रिगुणमयी पञ्चभूतात्मक शरीर से है, जबकि ब्रह्म का स्वरूप तो सर्वथा त्रिगुणातीत है।

(२) अज्ञान होते हुए भी ब्रह्म बृहत्, सर्वत्र, और पूर्ण किस प्रकार है?

उत्तर— उपनिषदों में ब्रह्म को प्रकृष्ट ज्ञान स्वरूप कहा गया है— "प्रज्ञानं ब्रह्म, सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तैत्तरीयोपनिषद्) अर्थात् ब्रह्म सत्य, ज्ञान स्वरूप, और अनन्त है। "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" अर्थात् ब्रह्म विज्ञान और आनन्द स्वरूप है। "बृहत्" का तात्पर्य है सर्वोपरि, सबसे बड़ा मोह को ही अज्ञान, भ्रम, कर्म, काल, शून्य, और नींद कहा गया है। महाभारत के कथनानुसार—

जगत् मोहात्मकं प्राहुः अव्यक्तात् व्यक्त संज्ञकम्।

अर्थात् उस अव्यक्त कारण प्रकृति से व्यक्त हुआ कार्य रूप जगत् मोहमयी कहा गया है।

यह स्पष्ट है कि सत्य और ज्ञान स्वरूप ब्रह्म इस

मोह रूप जगत में स्वरूप से एकरस व्यापक नहीं हो सकता।

यह अवश्य है कि उसकी सत्ता इस सृष्टि के कण-कण में वास कर रही है, अन्यथा एक पल के लिये भी यह जगत अस्तित्व में नहीं रह सकता है।

कोई कहे ए कछुए नहीं, तो ए भी क्यों बनि आवे।

जो यामे ब्रह्म सत्ता न होती, तो ब्रह्माण्ड न अधखिन रहने पावे॥

किरंतन २९/५

वेद के कथनानुसार यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म के एक पाद् (अव्याकृत) द्वारा प्रकट हुआ है। इस जगत के विपरीत ब्रह्म के सभी चारों पाद (अव्याकृत, सबलिक, केवल, सत् स्वरूप) विशुद्ध, चेतन, प्रकाशमय, और अखण्ड है।



पुरुष एवं इदम् सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्।

पादोस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥

ऋग्वेद १०/९/२

वस्तुतः ब्रह्म निजधाम में अपने अखण्ड त्रिगुणातीत और आदित्य स्वरूप (सूर्य सदृश प्रकाशमान) से विराजमान है, तो इस प्राकृतिक जगत् में सत्ता से कण-कण में व्यापक है। यजुर्वेद ४०/१ का कथन "ईशावास्यम् इदं सर्वम् यत्किञ्च जगत्याम् जगत्" अर्थात् ब्रह्म अपनी सत्ता से सबमें व्यापक है, इसी तथ्य की ओर संकेत कर रहा है।

इस प्रकार उस सर्वोपरि ब्रह्म को सर्वत्र पूर्ण कहा गया है।

(३) जाग्रत, स्वप्न, तथा सुषुप्ति से परे तुर्याभिदक पदार्थ क्या है?

उत्तर— जाग्रत, स्वप्न, तथा सुषुप्ति से परे समाधि की तुरीयावस्था होती है। उससे भी परे तुरीयातीत अवस्था होती है, जिसमें ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। जाग्रत, स्वप्न, तथा सुषुप्ति की अवस्थायें इस शरीर (स्थूल, सूक्ष्म, तथा कारण) से सम्बन्धित होती हैं। इससे परे की अवस्था में ही साक्षात्कार होता है—

"अस्माच्छरीरात् समुत्थाय परं ज्योतिरूपसंपद्य स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यते" छान्दोग्योपनिषद् ८ / १२ / ३ अर्थात् इस शरीर से परे होकर जीव उस ब्रह्म (परमज्योति) को प्राप्त होकर अपने स्वरूप से आनन्द प्राप्त करता है।

वेदान्त के अनुसार जीव की सुषुप्ति आदि अवस्थायें जीव-ब्रह्म का भेद स्पष्ट करती हैं-

सुषुप्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेन। वेदान्त दर्शन १/३/४२

अर्थात् जीव की सुषुप्ति और उत्क्रान्ति (परलोक जाने की अवस्था) में भेद से भी जीव और ब्रह्म का भेद है। यह स्पष्ट है कि जीव जाग्रत, स्वप्न, तथा सुषुप्ति की अवस्थाओं को पार करके तुरीय, तुरीयातीत, एवं आप्त अवस्था में उस ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। माण्डूक्य उपनिषद् में भी इसी प्रसंग का वर्णन है।

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैतं एवमोंकार

आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद।।१२।।

जीव अपने शरीर की जाग्रत, स्वप्न, तथा सुषुप्ति अवस्था से बाहर निकलकर चौथी अवस्था तुरीय में

आकर उस अविनाशी ब्रह्म का साक्षात्कार करता है, जो शब्दातीत, कल्याणकारी, और अद्वैत है। संसार के सभी प्रपञ्चों का इसमें उपशमन हो जाता है।

(४) जब ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है, तो माया का स्थान कहाँ है?

उत्तर— गीता में वर्णित अष्टधा प्रकृति (पंचभूत + मन + बुद्धि + अहंकार) अपरा प्रकृति में आती है, जो महाप्रलय में लय हो जाने वाली है। सम्पूर्ण प्राकृतिक जगत् काल के अधीन है, इसलिये इसे कालमाया का ब्रह्माण्ड कहते हैं।

इसके परे योगमाया का वह चैतन्य, अविनाशी ब्रह्माण्ड है, जहाँ ब्रह्म (शक्तिमान) अपनी अभिन्न शक्ति

(अनादि, अखण्ड माया) के साथ लीला करता है। ब्रह्म का निज स्वरूप वहीं पर (योगमाया में) तथा परमधाम में है, तथा उसकी सत्ता इस कालमाया के कण-कण में है।

कालमाया के पुरुष-प्रकृति स्वाप्निक हैं, जबकि योगमाया के पुरुष-प्रकृति अखण्ड हैं। कालमाया के पुरुष-प्रकृति को आदिनारायण-महामाया कहते हैं, जबकि योगमाया के प्रकृति-पुरुष को सुमंगला-पुरुष तथा चिदानन्द लहरी-पुरुष कहते हैं। महाप्रलय के पश्चात् आदिनारायण-महामाया अपने मूल सुमंगला-पुरुष को प्राप्त हो जाते हैं, अर्थात् यह त्रिगुणात्मिका माया सुमंगला-पुरुष से उत्पन्न होती है तथा उसी के संकल्प से पुनः विलीन (अव्यक्त) हो जाती है। पुराण संहिता में इसके सम्बन्ध में कहा गया है-

स्वप्नावस्थाविनाशः स्यात्कुतो नारायणस्तदा।

समष्टयज्ञाननाशस्तु सुषुप्त्या सह वै यदा॥

न तदाव्याकृतस्तिष्ठेत्कार्यकारण विप्लवात्।

अवशिष्टस्तदा साक्षात्स्वराडक्षर एव हि॥

पिण्ड ब्रह्माण्डविलये मूलाज्ञाने लयं गते॥

पुराण संहिता २१/६८,६९

जब स्वप्न अवस्था का भी विनाश हो जाये, तब नारायण कहाँ रह सकते हैं? जब सुषुप्ति के साथ सम्पूर्ण अज्ञान का नाश हो जाता है, तो कार्य-कारण रूप जगत के नष्ट हो जाने पर उस समय प्रकृति की कारण अवस्था भी नहीं रहती। पिण्ड और ब्रह्माण्ड के विलीन हो जाने तथा मूल अज्ञान के भी लय हो जाने पर केवल प्रत्यक्ष एवं प्रकाश स्वरूप ब्रह्म ही स्थित रहते हैं।

त्रिभाग शेषा निद्रा च भागशेषा च जाग्रतिः।

योगमायामयी शक्तिः प्रादुरासीत्तदाक्षरे॥

वियोगे योग सामथ्र्यं योगमायेति तां विदुः।

सा शक्तिः परमाश्चर्यरूपा बलवती शिवा॥

वियोगे मध्ये योगं च दर्शयन्ती स्वशक्तितः।

घटत्यघटितं चापि अभूतं भावयत्यपि।

अन्यथा कुरुते सर्वं यथावस्थितमेव हि।

झटित्यशेषं ग्रसति झटित्युत्पादयत्यहो॥

पुराण संहिता २८/३७-४०

तब अक्षर ब्रह्म के अन्दर योगमाया की शक्ति प्रकट हुई। यह तीन भाग नींद और एक भाग जाग्रत अवस्था वाली कही गयी है। वियोग की अवस्था में भी योग के

सामर्थ्य को प्रकट करने वाली उस शक्ति को योगमाया कहते हैं। वह शक्ति अत्यधिक आश्चर्यमयी, बलशालिनी, एवं कल्याणमयी है। वह वियोग की अवस्था में भी, अपनी शक्ति से योग को दर्शाती हुई, निर्मित न हो सकने वाले को भी पूर्ण करके दिखाने वाली है। अहो! वह शक्ति पूर्व स्थिति को पूरी तरह परिवर्तित कर देती है और सम्पूर्ण विश्व को शीघ्रतापूर्वक निगल लेती है, अर्थात् प्रलय कर देती है तथा अतिशीघ्र उत्पन्न भी कर देती है।

प्रकृति पैदा करे, ऐसे कई इंड आलम।

ए ठौर माया ब्रह्म सबलिक, त्रिगुन की परआतम॥

किरंतन ६५/१०

अक्षर ब्रह्म के हृदय सबलिक के स्थूल (अव्याकृत) के महाकारण में महामाया (मोह, प्रकृति) आदिनारायण



का मूल स्थान है। इस तथ्य को वेद में इस प्रकार वर्णित किया गया है—

बृहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता।

माया ह जज्ञे मायया मायाया मातली परि॥

अथर्व ८/९/५

वह बृहती प्रकृति (महत्) मात्रा प्रकृति (महाकारण प्रकृति, महामाया) से प्रकट हुई तथा वह मात्रा प्रकृति माता (निमित्त ब्रह्म) से प्रकट हुई। ज्ञानमयी शक्ति निश्चित ही "माया", अर्थात् ब्रह्म की निर्मात्री शक्ति, से ही प्रादुर्भूत हुई। वह स्वयंभू अनादि है और उस निर्मात्री शक्ति के वश में यह जीव है। इस मन्त्र में कम्पनशील परमाणुओं के समुद्र को महत्तत्व या बृहती प्रकृति कहा गया है, जिससे यह कार्य रूप जगत् प्रकट होता है।

उसका अव्यक्त स्वरूप ही महाकारण प्रकृति और महामाया है, जिसे मात्रा प्रकृति कहते हैं। कारण प्रकृति का वह स्वरूप, जिसमें परमाणु कम्पनशील होते हैं, बृहती प्रकृति कहलाता है। मात्रा प्रकृति अनादि अक्षर ब्रह्म के चौथे पाद अव्याकृत के महाकारण में स्थित सुमंगला-पुरुष के संकल्प से प्रकट होती है और उसी में विलीन हो जाती है।

यहाँ यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि यह जगत् ब्रह्म का विकार नहीं है, और न ही ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है, बल्कि निमित्त कारण है।

**(५) सूर्य के समक्ष अन्धकार कैसे ठहर सकता है?**

**उत्तर-** यह पूर्णतया सत्य है कि सूर्य (ब्रह्म) के समक्ष

अन्धकार (जगत्) कदापि ठहर नहीं सकता है। यह स्थिति और अधिक हास्यास्पद बन जाती है, जब यह कहा जाता है कि अन्धकार के कण-कण में सूर्य बैठा है, अर्थात् असत्, जड़, और दुःखमय जगत् के कण-कण में परब्रह्म (सत्, चित, आनन्द) विराजमान है। इसी प्रकार का यह भी कथन है कि सूर्य के अन्दर अन्धकार स्थित है, अर्थात् अखण्ड ब्रह्म में जगत् है। कहना तो यह चाहिये कि अखण्ड ब्रह्म की सत्ता में जगत् स्थित है।

यद्यपि सूर्य के सामने रात्रि रूपी अन्धकार का अस्तित्व नहीं होता है, किन्तु ऐसा अवश्य होता है कि दोपहर का सूर्य चमक रहा होता है, किन्तु काले घने बादलों के घिर जाने पर अन्धकार छा जाता है। बादल सूर्य के प्रकाश के सामने परदे का कार्य करते हैं, जिससे प्रकाश मद्धिम पड़ जाता है। यह प्राकृतिक जगत ही पर्दा

है, जिसके परे अखण्ड ब्रह्म का स्वरूप है। यजुर्वेद ३१/१८ में इसे ही "तमसः परस्तात्" अर्थात् ब्रह्म प्रकृति के अन्धकार से परे कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में भी यही भाव निहित है—

असतो मा सद् गमय , तमसो मा ज्योतिर्गमय,  
मृत्योर्माऽमृतं गमयेति।

शतपथ ब्राह्मण १४/३/१/३०

हे परब्रह्म! मुझे इस असत्य जगत् से सत्य (अपनी) की तरफ ले चलिये। प्रकृति के इस अन्धकार से परे उस ब्रह्मधाम की चेतन ज्योति की ओर ले चलिए, तथा मृत्यु से ग्रसित इस प्रकृति के संसार से परे अपने अविनाशी धाम में ले चलिये।

यह जगत् ब्रह्म के संकल्प द्वारा उपादान कारण

प्रकृति से बना है, इसलिये निमित्त कारण ब्रह्म इस जगत् से परे ही विद्यमान है, इसके कण-कण में नहीं। जिस प्रकार कुम्भकार (निमित्त कारण) मिट्टी (उपादान कारण) से घड़ा (जगत्) बनाता है, तो वह घड़े के कण-कण में नहीं बैठा होता है। उसी प्रकार अखण्ड ब्रह्म के स्वरूप में जगत् स्थित नहीं है, बल्कि उसकी सत्ता के आधार में स्थित है। उपनिषदों में ब्रह्म के स्वरूप को अखण्ड धाम में ही माना गया है—

स वेदैतत्परमं ब्रह्मधाम यत्रं विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्।

मुण्डकोपनिषद् ३/२/१/५४

अर्थात् वह ब्रह्मज्ञानी ही इस ब्रह्म के परमधाम को जानता है, जहाँ ब्रह्म का सम्पूर्ण शुद्ध स्वरूप प्रकाशित होता है।

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि।

दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योमन्यात्मा प्रतिष्ठितः॥

मुण्डकोपनिषद् २/२/६/३९

अर्थात् जो सर्वज्ञ ब्रह्म है, जिसकी महिमा इस जगत् में है, निश्चित रूप से यह ब्रह्म अमृत स्वरूप दिव्य ब्रह्मपुर में विराजमान है।

कठोपनिषद् १ / ३ / १ में कहा गया है कि "छायातपौ ब्रह्म विदो वदन्ति" अर्थात् ब्रह्मज्ञानी इस जगत् और ब्रह्म का स्वरूप छाया तथा धूप के समान कहते हैं। इस सम्बन्ध में सामवेद का यह मन्त्र बहुत अच्छी तरह प्रकाश डालता है—

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्योरिवासि।

विश्वा हि माया अवसि स्वधावन्भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु॥

## सामवेद आग्नेय काण्ड. १/८/३

हे ब्रह्म! तुम्हारा शुभ्रमय (नूरमयी) स्वरूप इस संसार से भिन्न दूसरा है और तुम्हारे संसार यज्ञ की रचना उससे भिन्न दूसरा स्वरूप है। ये दोनों ही दिन और रात्रि के समान विषम रूपों वाले हैं। आप सूर्य के समान सदा स्वप्रकाशी हैं। हे अखण्ड सत्ता वाले तथा सबका पोषण करने वाले ब्रह्म! आप ही सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञानों के रक्षक हैं। इस संसार में आपका दिया हुआ दान सबके लिये कल्याणकारी हो।

### (६) क्या ब्रह्म सर्वत्र कण-कण में है?

उत्तर- सभी धर्मग्रन्थों की मान्यता है कि ब्रह्म सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ वही हो सकता है, जो सर्वव्यापक हो। एकदेशी

अल्पज्ञ होगा। अल्पज्ञ कभी भी न तो सृष्टि की उत्पत्ति कर सकता है और न ही पालन कर सकता है। ऐसी स्थिति में मनीषी जनों ने ब्रह्म को सूक्ष्म से सूक्ष्म और सर्वव्यापक माना है तथा इसकी पुष्टि में अनेक ग्रन्थों के उद्धरण भी दिये हैं, यथा—

अणोरणीयान् महतो महीयान् आत्मास्य जन्तुर्निहितो गुहायाम्।

कठोपनिषद् २/२०

अर्थात् ब्रह्म सूक्ष्म से भी सूक्ष्म तथा बड़ा से बड़ा है। वह परमगुहा में प्राप्त होता है।

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि।

अथर्व ४/३३/६

अर्थात् हे ब्रह्म! तुम सभी ओर मुखों वाले सर्वत्र व्यापक हो।



अहमेव वातइव प्रवाम्या रभमाणा भुवनानि विश्वा।

ऋग्वेद १०/१२५/८

अर्थात् मैं (परमात्मा) वायु की भांति सर्वत्र व्याप्त हूँ  
और समस्त विश्वों का निर्माण करता हूँ।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म।

छान्दोग्य उपनिषद् ३/१४/१

अर्थात् यह सारा जगत ही ब्रह्म है अर्थात् इस जगत  
के कण-कण में ब्रह्म ओत-प्रोत हो रहा है।

वस्तुतः ब्रह्म की सत्ता कण-कण में है, स्वरूप  
नहीं। यदि ब्रह्म का स्वरूप इस सृष्टि के कण-कण में  
होता, तो इस प्रकार की स्थिति होती-

१. यह सम्पूर्ण जगत् चेतन होता।

२. यह सम्पूर्ण जगत् अखण्ड और आनन्दमय होता।

३. इस संसार में खोजने पर भी रोग, शोक, बुढ़ापा, मृत्यु, जन्म, तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मनोविकार नहीं मिलते।

४. हर व्यक्ति ब्रह्म की तरह सर्वज्ञ होता।

पूर्वोक्त जिन धर्मग्रन्थों का उद्धरण ब्रह्म के स्वरूप को इस सृष्टि के कण-कण में सिद्ध करने के लिये दिया गया है, उसका आशय ब्रह्म की सत्ता के कण-कण में व्यापक होने से है, न कि स्वरूप से।

कोई कहे ए कछुए नाहीं, तो ए भी क्यों बनि आवे।

जो यामें ब्रह्म सत्ता न होती, तो ब्रह्माण्ड न अधखिन रहने पावे।।

किरंतन २९/५

वेदादि ग्रन्थों में ब्रह्म का स्वरूप केवल ब्रह्मपुरी में ही

कहा गया है—

प्रभाजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम्।

पुरं हिरण्ययीं ब्रह्माविवेशापराजिताम्॥

अथर्व १०/२/३३

अर्थात् अतिशय तेज से प्रकाशमान, अति मनोहारिणी, यशोरूप तेज से चारों ओर से घिरी हुई, अति तेजस्विनी, किसी से भी न जीती गयी, उस ब्रह्मपुरी में ब्रह्म प्रवेश किये हुए हैं।

क्या "ब्रह्मपुरी" के ये लक्षण इस ब्रह्माण्ड या शरीर में हैं?

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावतां पुरम्।

अथर्व १०/२/२९

अर्थात् जो ब्रह्म की अमृत से आवृत्त उस ब्रह्मपुरी को जान लेता है।

क्या इस नश्वर जगत में अमृत है?

हिरण्ये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलं।

तद् शुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः यद् आत्म विदो विदुः॥

मुण्डकोपनिषद् २/२/९/४९

अर्थात् प्रकृति से परे उस तेजोमय कोश (ब्रह्मपुरी) में मल रहित, शुद्ध स्वरूप, निष्कल ब्रह्म विराजमान है। वह ज्योतियों का भी ज्योति है, जिसे केवल ब्रह्मज्ञानी जन ही जानते हैं।

उपनिषद् के इस कथन से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि ब्रह्म का अखण्ड स्वरूप इस वैकारिक जगत में नहीं है।

(७) यदि हम सब ब्रह्म हैं, तो अज्ञानी कौन है? वेद, षट् शास्त्र किसके लिये हैं? कौन किसको ढूँढ रहा है?

उत्तर— जीव कदापि ब्रह्म नहीं हो सकता। शंकराचार्य जी का अद्वैत सिद्धान्त यही है कि जीव और ब्रह्म एक ही हैं। इनमें जो भेद प्रतीत होता है, वह उपाधिजन्य है। वस्तुतः इनमें कोई भी अन्तर नहीं।

किन्तु, यदि समीक्षात्मक दृष्टि से देखा जाये, तो वेदान्त दर्शन में लगभग ७० सूत्र ऐसे हैं, जो जीव-ब्रह्म की भिन्नता सिद्ध करते हैं। आधुनिक नवीन वेदान्ती (शंकर मतानुयायी) अपने सिद्धान्त की पुष्टि में उपनिषदों के इन कथनों को आधार बनाते हैं—

अहं ब्रह्मास्मि।

बृ. १/४/१०

अयं आत्मा ब्रह्म।

बृ. २/५/१९

तत्त्वमसि।

छा. ६/८-१६

सोऽहम् अस्मीति।

बृ. १ / ४ / १

अपने मत की सिद्धि में इन कथनों का वैसे ही प्रयोग किया गया है, जैसे "मकान" या "दुकान" शब्द में से "कान" शब्द का प्रयोग करना। उपरोक्त चारों वाक्यों का सम्पूर्ण सन्दर्भ देखकर यदि समीक्षा की जाये , तो जीव-ब्रह्म की एकता कदापि सिद्ध नहीं की जा सकती। ये सभी कथन ब्रह्म के एकत्व को सिद्ध करने के लिये ब्राह्मी स्थिति में कहे गये हैं।

यदि तैत्तरीय उपनिषद् के आधार पर यह कहा जाये कि "ब्रह्मविदो ब्रह्मेव भवति", अर्थात् ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है, तो यह उचित नहीं है, क्योंकि प्रथम तो जानने से पहले वह ब्रह्म था नहीं। यदि जानने

के पश्चात् ब्रह्म बना, तब भी अनादि ब्रह्म तो हुआ ही नहीं। इस प्रकार सभी धर्मग्रन्थों द्वारा ब्रह्म को अनादि कहने का कथन झूठा हो जायेगा। तैत्तरीयोपनिषद् के इस कथन का आशय यह है कि ब्रह्म की प्रत्यक्ष अनुभूति कर लेने के पश्चात् जीव भी लौह अग्नित् ब्रह्म के साधर्म्य को प्राप्त हो जाता है, अर्थात् जिस प्रकार लोहे को अग्नि में तपाने पर उसमें अग्नि की तरह दाहकता का गुण आ जाता है, उसी प्रकार जीव भी ब्रह्म का साक्षात्कार करके प्राकृतिक विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि) से रहित निर्विकार होकर ब्रह्मानन्द का भोक्ता बन जाता है।

संक्षेप में वेदान्त दर्शन के वे सूत्र प्रस्तुत हैं, जो जीव को ब्रह्म से भिन्न दर्शाते हैं—

भेदव्यपदेशात् च।

वेदान्त १/१/१७

भेद कथन से तैत्तरीयोपनिषद् में कहा गया है—

रसो वै सः रसं हि एवं अयं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।

अर्थात् वह ब्रह्म आनन्द स्वरूप है। उसको प्राप्त करके ही जीव दुःख से मुक्त होकर आनन्द का भोक्ता होता है। इस कथन से यह पूर्णतया सिद्ध होता है कि जीव तथा ब्रह्म के स्वरूप में भेद है।

अस्मिनस्य च तद्योगं शास्ति। वेदान्त १/१/१९

अर्थात् इस ब्रह्म में जीव का योग प्रतिपादन होने से जीव ब्रह्म से भिन्न है, क्योंकि योग भिन्न पदार्थों का हुआ करता है।

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्। वेदान्त १/२/१

अर्थात् वेदादि सभी शास्त्रों में प्रसिद्ध उपदेश होने से। सभी वेदादि शास्त्र जीव को ब्रह्म से भिन्न होने का



स्पष्ट उपदेश करते हैं।

विवक्षितगुणोपपत्तेश्च।

वेदान्त १/२/२

अर्थात् जो गुण ब्रह्म में कहे गये हैं, वे सब जगत के कर्ता, धर्ता, हर्ता होने के लिये ब्रह्म में ही घटित होते हैं, जीव में नहीं।

यः सर्वज्ञः सर्वविधस्येष महिमा भुवि।

तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति।

मुण्डक उपनिषद् २/२

अर्थात् जो सर्वज्ञ ब्रह्म है, उसकी महिमा इस जगत में है। उसके विशेष ज्ञान से युक्त होकर धैर्यशाली योगी पुरुष उसके अविनाशी, प्रकाशमान, तथा आनन्दमयी स्वरूप को देखते हैं।

उपनिषद् के इस वचन में जीव को ब्रह्म से भिन्न बताया

गया है। अल्पज्ञ जीव ब्रह्म के अविनाशी स्वरूप को देखने का प्रयास करने वाला है। द्रष्टा और दृश्य का भेद अवश्य होता है।

अनुपफतेस्तु न शारीरः।

वेदान्त १/२/३

पञ्चभौतिक शरीरधारी जीव उन गुणों की उत्पत्ति न होने से जगत का कर्ता, धर्ता, तथा हर्ता ब्रह्म नहीं हो सकता।

कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च।

वेदान्त १/२/४

अर्थात् कर्म और कर्ता के कथन से भी।

छान्दोग्य ३/१४/४ में कहा गया है कि मैं इस शरीर को त्यागकर उस ब्रह्म को प्राप्त होऊँगा। इस वाक्य में पञ्चभौतिक शरीरधारी जीव को कर्ता अर्थात् प्राप्त करने वाला और ब्रह्म को कर्म अर्थात् प्राप्त होने वाला

कहा गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जीव ब्रह्म से भिन्न है। देह बन्धन से मुक्त होने तथा ब्रह्म को पाने की इच्छा करने वाला जीव अवश्य ही ब्रह्म से भिन्न है।

सुखविशिष्टाभिधानादेव च। वेदान्त १/२/१५

अर्थात् सुख युक्त कथन से भी।

ब्रह्म प्राकृतिक द्वन्द्वों से सर्वथा रहित है , जबकि जीव हमेशा ही सुख-दुःख से संयुक्त रहता है। सांख्य दर्शन ६/७ का स्पष्ट कथन है-

कुत्रापि कोऽपि सुखी न।

अर्थात् इस जगत् में कोई भी पूर्ण रूप से सुखी नहीं है। इस प्रकार जीव-ब्रह्म की एकता होना सम्भव नहीं है। अल्पज्ञ जीव को ज्ञान देने के लिये ही धर्मग्रन्थों की आवश्यकता होती है। दुःखों के बन्धन से छुटकारा पाने

के लिये ही जीव आनन्द स्वरूप ब्रह्म की उपासना करता है।

(८) जब कहा जाता है कि "सर्वं खल्विदं ब्रह्म", अर्थात् निश्चय ही यह सम्पूर्ण जगत् सच्चिदानन्दमय परब्रह्म है, तो स्थूल, सूक्ष्म, और कारण शरीर क्या है?

उत्तर— प्रथम तो यह जगत् सच्चिदानन्दमय है नहीं, अपितु त्रिगुणात्मिका प्रकृति का विकार है जो असत्, जड़, और दुःखमय है। शरीर ब्रह्माण्ड का एक सूक्ष्म रूप है। जिस प्रकार कारण प्रकृति से महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्च तन्मात्रा, तथा पञ्च स्थूलभूतों वाले इस ब्रह्माण्ड की रचना होती है, उसी प्रकार हमारे स्थूल, सूक्ष्म, तथा कारण शरीर की स्थिति है। सांख्य दर्शन में इस तथ्य को

इस प्रकार समझाया गया है—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः,

प्रकृतेर्महान महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात्।

पञ्च तन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः,

स्थूल भूतानि पुरुषः इति पञ्चविंशतिर्गुणः॥

सांख्य दर्शन १/२६

अर्थात् सत्व, रज, और तम की साम्यावस्था वाली प्रकृति है। प्रकृति से महत्, महत् से अहंकार, अहंकार से पञ्च तन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तथा गन्ध) और दोनों प्रकार की इन्द्रियाँ (ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय), तन्मात्राओं से स्थूलभूत उत्पन्न होते हैं। इनके अतिरिक्त पच्चीसवाँ तत्व चैतन्य जीव है। तीन शरीरों में ये तत्व इस प्रकार पाये जाते हैं—

१. कारण शरीर- अंतस्करण (मन + चित्त + बुद्धि + अहंकार)

२. सूक्ष्म शरीर- ४ अंतस्करण + ५ सूक्ष्म भूत + ५ ज्ञानेन्द्रिय + ५ कर्मेन्द्रिय

३. स्थूल शरीर (४ अंतस्करण + ५ सूक्ष्म भूत + ५ ज्ञानेन्द्रिय + ५ कर्मेन्द्रिय + ५ स्थूल तत्व)

स्पष्ट है कि स्थूल शरीर में स्थित २४ तत्व जड़ हैं एवं प्रकृति के रूप हैं। इनको ब्रह्ममय मानना वेद के कथनों के विपरीत है।

(९-१०) "मायातीत ब्रह्म" माया में कैसे और क्यों फँस गया?

उत्तर- शंकराचार्य जी के अद्वैत सिद्धान्त को मानने

वालों का यह मत है कि एकमात्र ब्रह्म ही जीव और जगत् का उपादान कारण है, अर्थात् ब्रह्म ही जीव और जगत् के रूप में भासित हो रहा है। उनका कथन है—

चिदानन्द प्रतिबिम्ब समन्विता।

तमोरजस्सत्त्वगुण प्रकृतिर्द्विविधा च सा॥१५॥

सत्त्वशुद्धयशुद्धिभ्यां मायाविद्ये च ते मते।

मायाबिम्बो वशीकृत्य तां स्यात् सर्वज्ञ ईश्वरः॥१६॥

अविद्यावशगस्त्वन्यस्तद्वैचित्र्यादनेकधा।

सा कारण शरीरं स्यात् प्राज्ञस्तत्राभिमानवान्॥१७॥

पञ्चदशी तत्त्व विवेक प्रकरणम्

सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म के प्रतिबिम्बित सत्त्व, रज, एवं तमस् गुण वाली प्रकृति दो प्रकार की है। सत्त्व की

शुद्धि से इसे माया तथा सत्व की अशुद्धि से अविद्या कहते हैं। अविद्या के वश में फँसा हुआ ब्रह्म विभिन्नता के कारण अनेक प्रकार का हो गया है, जिसे जीव कहते हैं। अविद्या ही कारण शरीर है। इसमें अभिमान करने वाला ही प्राज्ञ (जीव) है।

प्रश्न यह है कि उस नित्य, निर्विकार ब्रह्म में विकार क्यों और कैसे पैदा हो गया, जिसके कारण वह जीव, ईश्वर, और जगत् के रूप में परिणत हो गया? क्या ब्रह्म अज्ञान या अविद्या की तुलना में शक्तिहीन है? सर्वज्ञ ब्रह्म अल्पज्ञ जीव कैसे बना? नित्य चेतन् ब्रह्म जड़ प्रकृति के रूप में कैसे परिवर्तित हुआ?

वस्तुतः ब्रह्म को जीव और जगत् का अभिन्न निमित्त उपादान कारण मानना भूल है।



माया से सर्वथा अतीत रहने वाला, कूटस्थ, एकरस, अपरिणामी, प्रज्ञान स्वरूप, तथा नित्य निर्विकार वह ब्रह्म जीव एवं जड़ जगत के रूप में परिवर्तित हो जाये, यह सम्भव नहीं है। यदि यह कहें कि अन्तःकरण में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब ही चिदाभास (जीव) के रूप में है, तो यह प्रश्न उठता है कि अन्तःकरण की उत्पत्ति कहाँ से हो गयी, जब ब्रह्म से इतर अन्य किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं है?

"न इह नानास्ति किञ्चन " (कठोपनिषद् २/१/११) तथा "सर्वं खल्विदं ब्रह्म " (छान्दोग्य उपनिषद्) का अपने भावानुकूल अर्थ करके सम्पूर्ण जड़ जगत को ब्रह्म रूप घोषित नहीं किया जा सकता। इन सारी गुत्थियों को श्री प्राणनाथ जी के तारतम्य ज्ञान से सुलझाया जा सकता है।

प्रकृति का वह सूक्ष्मतम् स्वरूप, जिसे मोह तत्व (महामाया) कहते हैं, उसमें अक्षर ब्रह्म के मन (अव्याकृत) का स्वाप्निक स्वरूप प्रकट होता है। अव्याकृत का स्वप्न मनुष्य के स्वप्न से भिन्न प्रकार का होता है। वह मात्र संकल्प होता है, जबकि मनुष्य का स्वप्न नींद की अज्ञानावस्था में होता है – नार ही मोहतत्व है। उसमें स्वप्न रूप से प्रकट होने वाला स्वरूप ही नारायण है, जिसके संकल्प से सम्पूर्ण सृष्टि एवं प्राणियों का प्रकटन होता है।

सोऽकामयत् बहुस्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत।

स तपस्तप्त्वा इदंसर्वमसृजत। तै. २/६

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसुनवः।

ता यदस्य अयनं इति नारायणः स्मृतः॥ मनुस्मृति

इत अक्षर को विलस्यो मन, पांच तत्व चौदे भवन।

यामें महाविष्णु मन मन थे त्रिगुन, तार्थें थिर चर सब उतपन॥

प्रकास हिंदुस्तानी ३७/२४

वेदान्त के चौथे प्रश्न में मोहतत्व (महामाया) के प्रकटन के सम्बन्ध में स्पष्ट किया जा चुका है। स्वप्न में जो रूप प्रकट होता है, वह स्वप्नद्रष्टा का हूबहू रूप होता है। उसे ही प्रतिबिम्ब कहते हैं। प्रतिबिम्ब का तात्पर्य केवल दर्पण में ही आमने-सामने प्रतिबिम्बित होना नहीं है, बल्कि मन के स्वप्न द्वारा भी प्रतिबिम्बित होना है—

तूं कहा देखे खेल में, ए तो पड़्यों सब प्रतिबिम्ब।

प्रपंच पांचों तत्व मिल, सब खेलत सूरत के संग॥

किरंतन ७/२

स्वप्न का द्रष्टा मूलतः अपने स्थान पर ही रहता है।

उसका स्वापनिक मन ही उसका दूसरा रूप धारण कर स्वप्न में क्रियाशील होता है। दोनों रूपों में अद्भुत समानता होते हुए भी द्रष्टा के मूल स्वरूप में कोई स्पष्ट विकृति नहीं होती। उसका रूप, उसका वजन यथावत् रहता है।

यदि यह शंका करें कि जब स्वप्न में सिंह या किसी भयानक दृश्य को देखते हैं, तो स्वप्न के टूटने के बाद भी भय से मन काँपता रहता है, या स्वप्न में कपड़ा फाड़ने की स्थिति में अपना भी कपड़ा फाड़ देते हैं, तो इसका समाधान यह है कि ये सारी प्रक्रिया मानवीय स्वप्नों में उनके चित्त के वैकारिक संस्कारों के कारण होती है, जबकि अक्षर ब्रह्म का मन, चित्त (अव्याकृत, सबलिक) शुद्ध-बुद्ध ज्ञानावस्था में है। उनका सृष्टि-रचना के सम्बन्ध में संकल्प ही स्वप्न है। इस मायावी

जगत में इसे स्वप्न के दृष्टान्त से ही समझना पड़ता है।

पर सत ठौर का असत में, दृष्टान्त नहीं कोई और।

कलस हिंदुस्तानी

इस प्रकार स्वप्न द्रष्टा अक्षर ब्रह्म का मन मायावी विकारों से सर्वथा परे रहता है। उसका माया में किसी भी प्रकार से फँसने का प्रश्न ही नहीं है।

सत सुपने में क्यों कर आवे, सत सांई है न्यारा।

तुम पारब्रह्म सो परच्या नाहीं, तो क्यों उतरोगे पारा।।

किरंतन ३२/२

(११) अणु समान माया ने बृहत् ब्रह्म को किस प्रकार दबा दिया? सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म को असत्, जड़,

## और दुखात्मिका माया कैसे लगी?

**उत्तर-** वर्तमान समय में वेदान्तियों का यह मत है कि यह सम्पूर्ण जगत् जो असत्, जड़, और दुःखमय है, इसके अन्दर सच्चिदानन्द ब्रह्म ओत-प्रोत हो रहा है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् ही ब्रह्मरूप है।

इस मान्यता की पुष्टि में उनका तर्क यह होता है कि जिस प्रकार तिल में तेल है, फूल में सुगन्धि है, लकड़ी में अग्नि है, और दूध में घृत है, उसी प्रकार सृष्टि के कण-कण में ब्रह्म विराजमान है।

वस्तुतः तारतम्य ज्ञान द्वारा ही अध्यात्म जगत् के अनसुलझे प्रश्नों का समाधान होता है। यह कदापि सम्भव नहीं है कि अणु समान माया अनन्त ब्रह्म को ढक ले। क्या अन्धकार ने भी कभी प्रकाश को ढका है? यह

ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि ब्रह्म इस जगत की उत्पत्ति का निमित्त कारण है, उपादान कारण नहीं। तिल में तेल, फूल में सुगन्धि, लकड़ी में अग्नि, और दूध में घृत का होना इनका व्यक्तिगत गुण है, जबकि ब्रह्म प्रकृति का गुण नहीं है, बल्कि असत्, जड़, और दुःखमय जगत से भिन्न सत्, चित्, आनन्दमय परब्रह्म सर्वोपरि सत्ता है।

प्रकृति के तीन स्वरूप होते हैं— १. स्थूल २. सूक्ष्म ३. कारण। तिल में जो तेल है, फूल में जो सुगन्धि है, और दूध में जो घृत है, वह सूक्ष्म रूप से है, किन्तु लकड़ी में अग्नि कारण रूप से है। ब्रह्म तो प्रकृति के तीनों रूपों (स्थूल, सूक्ष्म, तथा कारण) से सर्वथा परे है। इस आधार पर ब्रह्म के अखण्ड स्वरूप को जगत के कण-कण में नहीं माना जा सकता है।

निमित्त कारण कभी भी उपादान कारण के अन्दर

व्यापक नहीं हो सकता। मिट्टी से घड़े को बनाने वाला निमित्त कारण कुम्भकार क्या घड़े के कण-कण में व्यापक होता है? तिल में तेल का होना तो उसका वैसे ही गुण होता है, जिस प्रकार पञ्चभूतों के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि गुण होते हैं। तिल को उगाने वाला कृषक तिल के कण-कण में नहीं बैठा होता है। फूल को लगाने वाला माली क्या फूल के कण-कण में बैठा होता है? दूध के कण-कण में क्या गाय बैठी होती है? लकड़ी के अन्दर अग्नि तो होती है, किन्तु अग्नि तो पृथ्वी तत्व के रूप में उपस्थित लकड़ी का उपादान कारण है। उपादान कारण कार्य में व्यापक होता है। इसी आधार पर कहा जाता है कि कार्य में कारण के गुण आते हैं।

कारण गुण पूर्वकः कार्य गुणो दृष्टः।

यदि ब्रह्म जगत का उपादान कारण होता या इसके



कण-कण में विराजमान होता , तो सारी सृष्टि ही सच्चिदानन्दमय होती। स्पष्ट है कि ब्रह्म जगत का निमित्त कारण है, जो माया से सर्वथा पृथक है।

यदि मुण्डक उपनिषद् १ / १ / ७ के इस कथन को उद्धृत किया जाये कि "यथा उर्णनाभिः सृजते गुह्यते च, यथा पृथ्वियाम् औषधयः सम्भवन्ति, सतः पुरुषात्केश लोमानि तथा अक्षरात् सम्भवति इह विश्वम्" अर्थात् जिस प्रकार मकड़ी अपने शरीर से जाल बनाती है तथा पुनः उसे समेट लेती है, पृथ्वी पर औषधि आदि वनस्पतियाँ पैदा होती हैं, उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म से सृष्टि का प्रकटीकरण होता है, अर्थात् ब्रह्म जगत का उपादान कारण भी है, तो इसका समाधान यह है कि मकड़ी जो जाला बनाती है, उसमें उपादान कारण उसका शरीर होता है, और निमित्त कारण उसका चैतन्य जीव। यही

स्थिति मनुष्य के शरीर से रोम और केश के उत्पन्न होने में भी है। पृथ्वी पर जो भी वनस्पति उगती है, उसमें वनस्पति के अवयव पृथ्वी तत्व से ही बने होते हैं। इस प्रकार हमें यह मानना पड़ेगा कि निमित्त कारण ब्रह्म इस जगत रूप माया से सर्वथा परे है। इस सम्बन्ध में वेद-उपनिषदों के ये कथन द्रष्टव्य हैं-

यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते।

स नः पर्षदति द्विषः॥

अथर्व वेद ६/३४/३

जो ब्रह्म दूर से भी दूर है, अन्तरिक्ष और द्युलोक को भी पार करके सबसे अधिक प्रकाशमान हो रहा है, वह हमें मनोविकार रूप शत्रुओं से परे कर दे।

अथर्ववेद के इस मन्त्र में स्पष्ट रूप से ब्रह्म का स्वरूप प्रकृति (अन्तरिक्ष और द्युलोक) से परे ही कहा

गया है। इसी प्रकार—

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।

नैनमूद्धर्व न तिर्य्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत॥

यजुर्वेद ३२/२

विद्युत के तुल्य प्रकाशमान ब्रह्म से सभी निमेष आदि उत्पन्न होते हैं। उस ब्रह्म को इस जगत में न नीचे, न ऊपर, और न बीच में, बल्कि प्रकृति से सर्वथा परे ही पाया जा सकता है।

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिन्लोके स्वर्हितम्।

तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित् इन्द्रायेन्दो परिस्रव॥

ऋग्वेद ९/११३/६

हे ब्रह्म! जहाँ अखण्ड शाश्वत ज्योति है। जिस लोक

में सदा आनन्द ही आनन्द निहित है, उस मृत्यु से रहित, विनाश से रहित लोक में मुझे स्थित कीजिए। हे आत्मन्! तू उस प्रियतम परब्रह्म के प्रति सदा संलग्न रह।

(१२) यह मिथ्या जगत अनादि काल से चला आ रहा है, फिर इसे रस्सी में सर्प के भ्रम के समान क्यों कहा गया है?

उत्तर— अद्वैतवादी आधुनिक वेदान्तियों की यह मान्यता है कि जब अन्धकार में रस्सी पड़ी होती है, तो उसे भ्रमवश सर्प समझकर डरा जाता है, किन्तु दीपक के सहारे जब देखा जाता है तो सर्प का भ्रम समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार अज्ञान के कारण ही यह जगत प्रतीत हो रहा है। "वेदान्त" के शुद्ध ज्ञान रूपी दीपक से

विदित हो जाता है कि यह संसार तो है ही नहीं, केवल सर्वत्र एकरस, कूटस्थ सच्चिदानन्द ब्रह्म ही है। उसके सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है।

किन्तु, यदि सूक्ष्म द्रष्टि से देखा जाये, तो संसार में रस्सी भी है और सर्प भी है। दोनों पदार्थों का भाव (उपस्थिति) है, अभाव नहीं। अन्धकार के कारण ही रस्सी में सर्प की भ्रान्ति प्रतीत हुई है। इसे भ्रान्तिजन्य तब माना जा सकता है, जब पदार्थ का सदा-सर्वत्र अभाव हो और फिर भ्रान्ति हो। स्वाभाविक रूप से खरगोश के सींग न होने से किसी भी समय और कहीं भी इनका अभाव बना ही रहता है। इस तथ्य में कभी भ्रान्ति होती ही नहीं। इस प्रकार यह कहना उचित नहीं है कि इस मिथ्या से लगने वाले जगत के मूल उपादान कारण का कोई अस्तित्व नहीं है।

ऋग्वेद १०/८१/३ में ब्रह्म द्वारा प्रकृति से जगत की उत्पत्ति का वर्णन है—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।

स बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैद्यवाभूमी जनयन्देव एकः॥

सर्वद्रष्टा, सर्वसंहर्ता, सर्वशक्तियों से युक्त, सत्ता द्वारा सर्वत्र व्यापक, वह ब्रह्म द्युलोक तथा पृथ्वी आदि जगत को उत्पन्न करने की भावना से गतिशील अति सूक्ष्म तत्वों से प्रेरणापूर्वक सृष्टि का सृजन करता है।

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कमरिइवाधमत्।

देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत्॥

ऋग्वेद १०/७२/२

सम्पूर्ण विश्व का पालक वह परमात्मा धौंकनी से फूँककर अग्नि को प्रदीप्त करने वाले शिल्पी के समान

सृष्टि के प्रारम्भ में उन अव्यक्त तत्वों को अपनी चैतन्य शक्ति से प्रेरित करता है, तब अव्यक्त प्रकृति से यह व्यक्त जगत उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार का कथन वेदान्त दर्शन के सूत्रों में भी है—

न विलक्षणन्त्वादस्य तथात्वं च शब्दात्॥

वेदान्त दर्शन २/१/४

विलक्षण होने से ब्रह्म जगत का उपादान कारण नहीं। ब्रह्म चेतन है, जगत जड़ है, ब्रह्म शुद्ध स्वरूप है, जबकि जगत अशुद्ध। जगत सुख, दुःख, और मोह से युक्त त्रिगुणात्मक देखा जाता है। इस प्रकार इसका उपादान कारण त्रिगुणात्मक होना चाहिए। त्रिगुणातीत ब्रह्म इसका उपादान नहीं हो सकता। ब्रह्म और जगत की यह विलक्षणता शब्द अर्थात् वेद-शास्त्र से जानी जाती

है।

दृश्यते तु।

वेदान्त दर्शन २/१/६

सूक्ष्म आदि कारण से स्थूल (जगत) की उत्पत्ति शास्त्र व लोक में देखी जाती है। ब्रह्म सत्-चित-आनन्द स्वरूप है। जगत जड़ रूप है। इस प्रकार अचेतन जगत चेतन ब्रह्म का परिणाम नहीं हो सकता। यह अचेतन (जड़) प्रकृति का ही परिणाम है।

असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत्।

तैत्तरीयोपनिषद् २/७

सर्वप्रथम असत् (अव्यक्त प्रकृति) का ही अस्तित्व था। पुनः ब्रह्म ने अपनी प्रेरणा से असत् से सत् (व्यक्त कार्यरूप जगत) को प्रकट किया।

इस विवेचना से यह स्पष्ट है कि रस्सी में सर्प के



भ्रम के दृष्टान्त से मूल उपादान कारण प्रकृति के अस्तित्व को नकारना सत्य के साथ अन्याय करना है।

(१३) जब ब्रह्म सर्वत्र, एकरस, पूर्ण है, तो उसके किस देश से माया को पृथक करोगे?

उत्तर— वेदान्त के विद्वानों की यही मान्यता है कि ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है, फिर भी वह माया से सर्वथा परे है। इसे सिद्ध करने के लिये वे ब्रह्म को प्रकृति से भी सूक्ष्म कहते हैं। सबसे अधिक सूक्ष्म होने के कारण सच्चिदानन्द परब्रह्म माया के अन्दर भी व्यापक तो होता है, किन्तु उसमें कूटस्थ और निर्विकार रहता है, प्रायः ऐसी ही सबकी मान्यता है।

श्री प्राणनाथ जी के तारतम्य ज्ञान से ही माया और

ब्रह्म के स्वरूप को अलग-अलग दर्शाया जाता है, अन्यथा सारा संसार तो ब्रह्म और माया को तिल में तेल और फूल में सुगन्धि की तरह मानता है। इसके साथ यह भी ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि ब्रह्म को माया से सर्वथा पृथक भी कहा जाता है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं आदित्यवर्णं तमसस्परस्तात्।

यजुर्वेद ३१/१८

अर्थात् प्रकृति के अन्धकार से सर्वथा पृथक, उस अखण्ड (सूर्य सदृश) स्वरूप वाले, सबसे महान, उस परम पुरुष को मैं एकमात्र परमात्मा जानता हूँ, जिसको जाने बिना इस मृत्यु रूपी संसार से पार होने का कोई भी मार्ग नहीं है।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनो न विद्मो न विजानीमो।

## केनोपनिषद् १/३

अर्थात् ब्रह्म के धाम में न तो नेत्र की दृष्टि जाती है, और न वाणी और मन की ही गति है। उसे अपनी बुद्धि द्वारा न तो हम यथार्थ रूप से जानते हैं और न कोई अन्य भी जान पाता है।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

तैत्तरीय उपनिषद् ब्र. व. अनु. ४

वाणी जहाँ (ब्रह्म धाम) से लौट आती है और जो मन से प्राप्त नहीं होता। यदि इस मायावी जगत के कण-कण में परब्रह्म का अनन्त सूर्यो से भी अधिक प्रकाशमान स्वरूप स्थित होता, तो वेदों एवं उपनिषदों में उसे कभी भी मन, चित्त, बुद्धि आदि से परे नहीं कहा जाता।

शकमयं धूममाराद पश्यं विषुवता पर एनावरेण।

अथर्व वेद ९/१०/२५

मैं तत्वदर्शी ऋषि नाना प्रकार की उत्पत्ति क्रिया से युक्त इस प्रत्यक्ष कार्य रूप जगत से परे, शक्तिमय, और इस संसार को गति देने वाले परमात्मा को निमित्त कारण रूप से साक्षात् देख रहा हूँ।

केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम्।

अथर्व वेद १०/२/२०

मोक्ष की इच्छा करने वाला व्यक्ति वेद के विद्वान श्रोत्रिय पुरुष को किस रीति से प्राप्त करता है और इस परम मोक्ष धाम में विराजमान ब्रह्म को किस मार्ग से प्राप्त करता है?

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते।

कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव॥

ऋग्वेद १०/११३/११

जहाँ आनन्द और हर्ष है, जहाँ अनन्त प्रसन्नता है, जहाँ कामना करने वाले की सम्पूर्ण कामनायें प्राप्त हो जाती हैं। हे परब्रह्म! मुझे उस अखण्ड ब्रह्म धाम में आनन्दित कीजिए।

वेद के उपरोक्त कथनों से यह स्पष्ट है कि ब्रह्म और माया का स्वरूप अलग-अलग है। इस सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द कृत "सत्यार्थ प्रकाश" के ये कथन द्रष्टव्य हैं—

"उस अखण्ड एकरस ब्रह्म स्वरूप में नाना वस्तुओं का मेल नहीं है, किन्तु ये पृथक-पृथक स्वरूप में परमात्मा के आधार में स्थित है।"

श्री प्राणनाथ जी की वाणी ब्रह्म और माया के स्वरूप के सम्बन्ध में स्पष्ट प्रकाश डालती है—

हो मेरी वासना, तुम चलो अगम के पार।

अगम पार अपार पार, तहां है तेरा करार।।

तूं देख निज दरबार अपनो, सूरत एही संभार।।

तूं कहा देखे इन खेल में, ए तो पड़यो सब प्रतिबिम्ब।

प्रपंच पांचों तत्व मिल, सब खेलत सूरत के संग।।

किरंतन ७/१-२

श्री महामति जी का कथन है कि यह सम्पूर्ण मायावी जगत उस कारण प्रकृति से बना है, जो पूर्णतया निराकार है। ब्रह्म का अखण्ड स्वरूप तो महामाया (महाशून्य, अगम) एवं बेहद से परे है। ब्रह्म और माया की विशेष विवेचना करने वाले वेदान्ती विद्वानों के प्रति

श्री जी की यह हास्योक्ति द्रष्टव्य है—

खिन में कहें सब ब्रह्म है, खिन में बंझा पूत।

मदमाते मरकट ज्यों, करे सो अनेक रूप॥

कलस हिंदुस्तानी २/२६

अर्थात् एक क्षण में तो ये आधुनिक वेदान्ती ऐसा कहते हैं कि यह सम्पूर्ण मायावी जगत् ब्रह्म रूप है। दूसरे क्षण कहते हैं कि जिस प्रकार वन्ध्या स्त्री का पुत्र नहीं होता और खरगोश की सींग नहीं होते, उसी प्रकार माया रूपी इस जगत् का कोई अस्तित्व ही नहीं है। महामाया से बने जगत् को ब्रह्म रूप कहकर पुनः उसका निषेध करना वैसे ही है, जैसे मदमाते बन्दर की क्रीड़ा। तारतम्य ज्ञान से स्पष्ट विदित होता है कि उस स्वलीला अद्वैत परमधाम में अक्षरातीत की लीला होती है तथा

बेहद में परब्रह्म के सत् के स्वरूप अक्षर ब्रह्म की लीला होती है। अक्षर ब्रह्म के चौथे पाद अव्याकृत (सबलिक के स्थूल) में स्थित सुमंगला-पुरुष का स्वप्न ही इस मायावी सृष्टि का कारण है।

स्पष्ट है कि हृद के इस त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड में ही माया एवं क्षर पुरुष आदिनारायण (अव्याकृत के स्वप्न) की लीला है, सर्वत्र नहीं। तीनों पुरुषों की तीन लीलायें हैं— क्षर पुरुष (आदिनारायण) की लीला हृद में, अक्षर की लीला बेहद में, तथा अक्षरातीत परब्रह्म की लीला परमधाम में होती है जहाँ माया का कोई भी नामोनिशान नहीं है।

जोग माया तो माया कही, पर नेक न माया इत।

ख्वाबी दम सत होवहीं, सो सब सत की बरकत॥



कलस हिंदुस्तानी २४/११

(१४) माया का अत्यन्ताभाव कैसे होगा? भ्रम का द्रष्टा कौन है?

उत्तर- माया का अत्यन्ताभाव तो ब्रह्म के साक्षात्कार से ही सम्भव है, अन्यथा जीव तो अपने चित्त के वासनाजन्य संस्कारों के कारण मायावी सुखों के ही जाल में फँसा रहता है। जब जीव अपने चित्त की वृत्तियों का निरोध करके ब्राह्मी अवस्था को प्राप्त करता है, तब वह इस संसार को द्रष्टा की तरह देखता है। योग दर्शन में यही भाव व्यक्त किया गया है-

चित्त वृत्ति निरोधः योग।

योग दर्शन १/१

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।

योग दर्शन १/२

ब्राह्मी अवस्था से पूर्व, जीव अपने स्थूल, सूक्ष्म, तथा कारण शरीर द्वारा मायावी सुख का किसी न किसी रूप में उपभोग करता है, किन्तु अपने शुद्ध स्वरूप (ब्राह्मी स्थिति) में वह स्वयं को माया से अलग अनुभव करता है। ऐसी स्थिति में उसे भ्रम का द्रष्टा कहते हैं, जबकि पूर्व स्थिति में वह भ्रम का शिकार (स्वरूप की विस्मृति) होता है।

आधुनिक वेदान्तियों द्वारा ब्रह्म का स्वयं को भ्रमपूर्वक जीव रूप में देखना वेद-वेदान्त को स्वीकार्य नहीं है। जिस ब्रह्म को उपनिषदों में "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तैत्तरीयोपनिषद्), "ज्ञानामानन्दं ब्रह्म" (बृ० ३/९/२८), "प्रज्ञानं ब्रह्म" (ऐ.उप. ३/५/३), "यस्य ज्ञानमयं तपः" आदि कहा गया है, वह अज्ञान दशा में भ्रमपूर्वक अपने को जीव रूप में देखें, यह कदापि सम्भव

नहीं है।

ब्रह्म के साक्षात्कार के सम्बन्ध में श्वेताश्वतरोपनिषद् २/५ में कहा गया है—

यदात्मतत्वेन तु ब्रह्मतत्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत।

अर्थात् आत्म तत्व से ब्रह्म तत्व को ऐसे देखा जाता है, जैसे एक दीपक से दूसरा दीपक जलाया जाता है।

जिस प्रकार एक दीपक से दूसरा दीपक जलाया जाता है, उसी प्रकार ब्रह्म के साक्षात्कार से आत्मा के अन्दर ब्रह्म की निर्विकारिता, आनन्द आदि गुण भासने लगते हैं, इसे ही माया का अत्यन्ताभाव कह सकते हैं। मुण्डक उपनिषद् २/८ में इस तथ्य को इस प्रकार कहा गया है—

भिद्यते हृदय ग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्व संशयाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

इस कार्य-कारण रूप जगत से परे उस ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने पर हृदय की वासना रूपी ग्रन्थियाँ नष्ट हो जाती हैं। यही माया का अभाव है।

वेदान्त इसे निम्न रूप में प्रस्तुत करता है-

प्रकाशादिवच्चावैशेष्यं प्रकाशश्च कर्मण्यभ्यासात्।

वेदान्त दर्शन ३/२/२५

ध्यान, समाधि आदि कर्म में निरन्तर अनुष्ठान से आत्मा में ब्रह्मज्ञान रूपी प्रकाश का प्रकटीकरण होता है। इस अवस्था में प्रकाश आदि के समान आत्मा का परब्रह्म के साथ अविशेषभाव (अभेदभाव) हो जाता है। जिस प्रकार प्रकाश प्रकाश में, जल जल में, दूध दूध में,

तथा तेल तेल में मिल जाने पर एक समान प्रतीत होते हैं।

परन्तु, उस अवस्था में भी उनका अपना निजी अस्तित्व बना रहता है। रेत के ढेर में दूसरी जगह से मुट्ठी भर रेत मिला देने पर एक जैसा ही प्रतीत होता है, किन्तु मुट्ठी भर रेत के कण उस अवस्था में भी अपना अस्तित्व सुरक्षित रखते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मानन्द में डूबी हुई आत्मा का अस्तित्व बना रहता है।

अतोऽनन्तेन तथा हि लिङ्गम्।

वेदान्त दर्शन ३/२/२६

अनन्त परब्रह्म के साथ आत्मा की अभेद स्थिति हो जाती है। यही माया का अत्यन्त अभाव कहा जा सकता है।

(१५) जब सर्वत्र सर्व रूप से ब्रह्म ही है , तो गुरु-शिष्य, स्वामी-सेवक कौन? उपदेश किसको दिया जाता है?

उत्तर- नवीन वेदान्त (शंकराचार्य कृत अद्वैत मत) का यह कथन है कि एकमात्र ब्रह्म के सिवाय कुछ भी नहीं है। कूटस्थ, चेतन, अनादि, अखण्ड ब्रह्म ही जीव और जड़ जगत् के रूप में भासित हो रहा है। यह प्रश्न होता है कि चेतन ब्रह्म जड़ जगत् के रूप में कैसे परिवर्तित हो सकता है?

यह सर्वमान्य तथ्य है कि ब्रह्म अपरिणामी (अपरिवर्तनशील) है। जड़ न तो चेतन हो सकता है और न चेतन जड़ हो सकता है। जड़ का चेतन के रूप में भासित होने का सिद्धान्त तो चार्वाक जैसे नास्तिकों का है।

संसार में यही देखा जाता है कि गुरु ज्ञान देने वाला होता है तथा शिष्य ज्ञान लेने वाला। उपनिषदों में ब्रह्म को सर्वज्ञ तथा ज्ञान स्वरूप कहा है—

यो सर्वज्ञो सर्व विधस्येष महिमा भुवि।      मु. उ. २/२

सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म।      तैत्तरीयोपनिषद २/२

प्रज्ञानं ब्रह्म।      ऐ. उ. ३/५/३

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म।      बृ. आ. ३/९/२८

ऐसा ब्रह्म यदि अज्ञानी के रूप में स्वयं को अनुभव करे तथा गुरु से ज्ञान प्राप्त करें, तो इसे क्या कहा जायेगा? क्या यही ब्रह्मज्ञान है? यदि यह कहा जाये कि यह तो सब उपाधि मात्र है। ब्रह्म तो इनसे भिन्न अखण्ड, एकरस, निर्विकार, और सर्वज्ञ है। एकमात्र चेतन स्वरूप उस ब्रह्म में अल्पज्ञता कहाँ से आयी? क्या माँसाहारी

और शराबी की उपाधि "देवता" हो सकती है? उपाधि भी तो लक्षण के आधार पर ही होती है, निराधार नहीं। यदि यह कहा जाये कि अज्ञानता, काम, क्रोधादि विकार अन्तःकरण के धर्म हैं, शुद्ध ब्रह्म के नहीं, तो जब ब्रह्म से भिन्न और कुछ है ही नहीं, तो अन्तःकरण और काम, क्रोध आदि विकारों की कल्पना क्यों? जब एकरस सर्वत्र ब्रह्म के सिवाय अन्य किसी के अस्तित्व का निषेध किया जाता है, तो अज्ञान, काम, क्रोध आदि विकार तथा नर्क आदि के दुःखों का अस्तित्व क्यों? इनको उपाधि मात्र कहना सत्य को झुठलाना है। इन्हीं सब भ्रान्तिमय विचारों के सम्बन्ध में श्री जी का कथन है—

कलि में देख्या ज्ञान अचंभा।

बातन मोहोल रचे अति सुन्दर, चेजा जिमी न थंभा।।



अंग न इन्द्री अन्तस्करण वाचा, ब्रह्म न पोहोंचे कोए।  
 यों कहें साख पुरावे श्रुती, फेर कहें अनुभव होए।।  
 अहं ब्रह्मास्मि होए के बैठे, तत्त्वमसि और कहावें।  
 स्वामी शिष्य न क्रिया करनी, यों महावाक्य दृढ़ावें।।

किरंतन ३१/१-३

इस कलियुग में नवीन वेदान्तियों का विचित्र ही ज्ञान देखने में आता है। इन्होंने बिना जमीन, खम्भों, और दीवारों के ही बातों का हवाई महल खड़ा कर रखा है। एक तरफ तो ये कहते हैं कि उस ब्रह्म तक अन्तःकरण तथा इन्द्रियों की पहुँच नहीं है और इसकी साक्षी भी श्रुति से देते हैं, फिर कहते हैं कि हमें इसका अनुभव भी होता है। वेदान्त के ये आधुनिक ज्ञानी स्वयं ही ब्रह्म होकर बैठे रहते हैं तथा दूसरों को भी ब्रह्म होने

का उपदेश देते हैं।

द्वादश महावाक्यों—

- |                                |                                   |
|--------------------------------|-----------------------------------|
| १. प्रज्ञानं ब्रह्म            | ऐ. उ. ३/५/३                       |
| २. अहम्ब्रह्मास्मि             | श. ब्रा. ४/३/२/२१                 |
| ३. तत् त्वमसि।                 | छा. उ. ६/८/७                      |
| ४. अयमात्मा ब्रह्म।            | माण्डू. उ. २                      |
| ५. सर्वम् खल्विदं ब्रह्म्।     | छा. उ. ३/१४/१                     |
| ६. एकमेवाद्वितीयं।             |                                   |
|                                | ब्रह्मश्वे. ६/११ तथा छा. उ. ६/२/१ |
| ७. आनन्दो ब्रह्म।              | तैतरीयो. ३/६                      |
| ८. सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म। | तैतरीयो. २/२                      |
| ९. विज्ञानमानन्द ब्रह्म।       | बृ. आ. ३/९/८                      |

१०. आदित्यो ब्रह्म। छा. उ. ३/१९

११. अमृतं अभयमेतद् ब्रह्म। छा. उ. ९/३/४

१२. कं ब्रह्म खं ब्रह्म। छा. उ. ९/१०/५

का राग अलापने वाले स्वामी-शिष्य के रूप में ये लोग ब्रह्मवाद का दावा करके भी ब्रह्म-साक्षात्कार के लिये आलस्यवश कुछ भी प्रयास नहीं करते। जो लोग ब्रह्म के सिवाय अन्य किसी का भी अस्तित्व ही नहीं मानते, उन्हें अपने को गुरु तथा दूसरों को सेवक नहीं समझना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने पर तो सर्वशक्तिमान परब्रह्म ही शिष्य और सेवक के रूप में माना जायेगा, जो कदापि सम्भव नहीं है।

एकमात्र परमधाम में ही यह बात घटित हो सकती है कि वहाँ परब्रह्म के सिवाय अन्य किसी का भी

अस्तित्व नहीं है। परब्रह्म ही वहाँ सभी रूपों में लीला कर रहा है, इसी को "स्वलीला अद्वैत" कहते हैं। इस कालमाया के मायावी ब्रह्माण्ड में द्वैत (जीव+प्रकृति) की लीला है, योगमाया के ब्रह्माण्ड में अद्वैत, तथा परमधाम में स्वलीला अद्वैत लीला है। तारतम्य ज्ञान से ही द्वैत, अद्वैत, तथा स्वलीला अद्वैत का स्पष्ट निरूपण होता है। इसके बिना परमधाम के प्रसंगों को इस नश्वर जगत में घटाने की भूल पहले से होती आयी है। श्री प्राणनाथ जी की वाणी के अनुशीलन से ही वेदान्त के वास्तविक तात्पर्य को समझा जा सकता है।

**वेदान्त के १५ प्रश्नों के उत्तर पूर्ण हुए।**

## वेद के २५ प्रश्न

सच्चिदानन्द परब्रह्म की कृपा से वेद के २५ कठिन प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास किया गया है। इन उत्तरों की पूर्ण सत्यता का दावा तो नहीं है, बल्कि प्रियतम ब्रह्म की कृपा की छाँव तले एक लघु प्रयास है। आशा है सभी सुन्दरसाथ एवं धर्मप्रेमी जिज्ञासुओं को ये उत्तर पसन्द आयेंगे।

(१) चत्वारि श्रृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासा अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आ विवेश। (ऋग्वेद ४/५८/३)

एक वृषभ (बैल) है, जिसके चार सींग हैं, तीन पैर हैं, दो सिर हैं, तथा सात हाथ हैं। तीन से बँधा हुआ यह

बैल निरन्तर उपदेश देता है। इसका रहस्य क्या है?

उत्तर—

धर्म रूपी बैल के चार श्रृंग— चार वेद।

तीन पैर— तीन सवन अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद द्वारा ज्ञान, उपासना, तथा कर्म।

दो शिर— प्रायणीय और उदयनीय। संवत्सर की दृष्टि से उत्तरायण और दक्षिणायण। मास की दृष्टि से दर्श (अमावस्या) और पौर्णमास (पूर्णिमा)। अहोरात्र की दृष्टि से प्रातः और सायंकाल।

सात हाथ— वेद के सात छन्द (अनुष्टुप, त्रिष्टुप, गायत्री, बृहती, जगती, उष्णिक, पंक्ति)।

तीन बन्ध— संहिता, ब्राह्मण, और कल्प। संहिता में मन्त्रों का संकलन, ब्राह्मण ग्रन्थों में विधि व्याख्या, तथा

कल्प ग्रन्थों द्वारा निर्देशन।

(२) सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।

देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबन्धनन्पुरुषं पशुम्॥

(ऋग्वेद १०/९०/१५, यजुर्वेद ३१/१५)

ब्रह्म की उपासना रूप यज्ञ करते हुए विद्वान लोग उस परमात्मा को अपने हृदय में ध्यान करते हैं (बाँधते हैं)। उस समय इस उपासना यज्ञ की सात परिधियाँ तथा इक्कीस समिधायें होती हैं। वे क्या हैं?

उत्तर—

उपासना रूप यज्ञ की सात परिधियाँ – गायत्री आदि सात छन्दों में निहित वैदिक अध्यात्म ज्ञान या सात सूरति (चित्, वृत्ति)।

इक्कीस समिधायें- प्रकृति, सत्व, रजस्, तमस् (तीन गुण), महत्तत्व, अहंकार, पाँच सूक्ष्म भूत, पाँच स्थूल भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रिय।

(३) पञ्चस्वन्तः पुरुषऽआविवेश तान्यन्तः  
पुरुषेऽअर्पितानि। (यजुर्वेद २३/५२)

पाँच के अन्दर परमात्मा अपनी व्याप्ति से अच्छी प्रकार व्याप्त हो रहा है। वे पाँच भी पूर्ण परमात्मा के भीतर स्थापित हैं। वे पाँच क्या हैं?

उत्तर- परमधाम में पाँच स्वरूप हैं-

१. सत् अंग-अक्षर ब्रह्म
२. चिद्धन स्वरूप- श्री राज जी
३. आनन्द अंग- श्यामा जी



४. आत्मार्ये

५. महालक्ष्मी।

ये पाँचों स्वरूप मिलकर ही सच्चिदानन्द परब्रह्म का पूर्ण स्वरूप कहलाते हैं। पूर्ण ब्रह्म इन पाँचों स्वरूप के रूप में विराजमान होकर लीला करते हैं।

(४) इदं त एकं परं उत एकं तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व।

(सामवेद आग्नेय का. १/७/३, ऋग्वेद १०/५६/१)

यह एक ज्योति है। इससे भी उत्कृष्ट एक दूसरी ज्योति है। तुम तीसरी ज्योति के साथ मग्न रहो। वे तीनों ज्योतियाँ कौन-कौन सी हैं?

उत्तर— तीन ब्रह्माण्ड हैं—

१. हृद का कालमाया ब्रह्माण्ड

२. बेहृद का योगमाया ब्रह्माण्ड

३. परमधाम।

हृद की ज्योति मोहमयी त्रिगुणात्मक है। इसका रूप अग्नि तत्व के रूप में भाषित होता है। सूर्यादि नक्षत्रों की ज्योति इसी के अन्तर्गत आती है।

बेहृद की ज्योति अद्वैत नूरमयी है। यह चेतन, अखण्ड, और सुखमयी है तथा अक्षर ब्रह्म की ज्योति है।

परमधाम की ज्योति अक्षरातीत परब्रह्म की है, जो चेतन, नूरमयी, अनन्य प्रेममयी (इश्कमयी या आनन्दरूपी), स्वलीला अद्वैतमयी, अनादि, अखण्ड, और सच्चिदानन्दमयी है।

(५) ये त्रिसप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि ब्रिभ्रतः।

(अथर्व वेद १/१/१)

चेतन-अचेतन पदार्थों को धारण करते हुए घूमने वाले २१ पदार्थ कौन से हैं?

उत्तर- प्रकृति (कारण), महत्तत्त्व, चित्त, बुद्धि, अहंकार, मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्रा।

(६) अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके  
अनृणाः स्याम्। (अथर्ववेद ६/११७/३)

हम लोग इस लोक में, परलोक में, और तृतीय लोक में भी ऋण-रहित हो जायें। वे तीनों लोक कौन-कौन से हैं?

उत्तर- १. मृत्यु लोक

२. वैकुण्ठ या निराकार मण्डल (महाशून्य)

३. बेहद (योगमाया का ब्रह्माण्ड)

(७) पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गां पश्चनाम्नी मृतवोऽनु  
पञ्च। पञ्च दिशेः पञ्च दशेन कृप्तास्ता एक मूर्ध्नीरभि  
लोकमेकम्। (अथर्व वेद ८/९/१५)

पाँच व्युष्टियों के साथ पाँच दोहे हैं और पाँच नाम  
वाली गौ के साथ पाँच ऋतुएँ हैं। पन्द्रहवें ने पाँच दिशाओं  
को वश में किया हुआ है। ये सब एक ही शिर वाले एक  
लोक के चारों ओर आश्रय लिये हुए हैं। इस पहेली का  
रहस्य क्या है?

**उत्तर-** पञ्च व्युष्टि- पाँच प्राण हैं। उनके पाँच प्रकार के दोहे अर्थात् ग्राह्य विषय हैं। इसी प्रकार आधिदैविक में- "पाँच" प्रकृति के विशेष विकार पञ्चभूत हैं। उनके साथ उनके पाँच दोहे अर्थात् तन्मात्रायें हैं। उनमें विद्यमान गन्ध आदि विशेष धर्म हैं। अध्यात्म में "पञ्च नाम्नी गौ" चित्त शक्ति है, जिसमें पाँच ऋतु गतिमान पाँच प्राण हैं। शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच दिशायें हैं। उन पर अधिकार उस पञ्चदश आत्मा का है। "प्राणो वै त्रिवृदात्मा पञ्चदशः ताम्" (१९/११/३), वे पाँचों दिशा रूप ज्ञानेन्द्रियाँ एक ही मूर्धा स्थान में लगी हैं अर्थात् उनका एक ही मूल आत्मा या मुख्य प्राण है। वे सभी एक ही आत्मा में आश्रित हैं।

(८) पञ्चौदनः पञ्चधा विक्रमताक्रंस्यमानस्त्रीणि  
ज्योतीषि। ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं तृतीये नाके अधि  
विश्रयस्व॥ (अथर्व वेद ९/५/८)

पाँच ओदनों से युक्त तीन ज्योतियों का अभिलाषी  
मुमुक्षु पाँच से उद्योग करे। हे मुमुक्षु! तुम शुद्ध हृदय वाले  
विद्वानों के पास जाओ। उनसे ज्ञान प्राप्त करके तीसरे  
मोक्षधाम में आश्रय प्राप्त करो। पाँच ओदन , तीन  
ज्योतियाँ, तथा उसके साधनभूत पाँच से क्या तात्पर्य  
है? तीसरा मोक्षधाम कौन है?

उत्तर— पाँच ओदन—

पाँच इन्द्रियों से पाँच प्रकार के विषयों का ज्ञान प्राप्त  
करना ही "पंचौदन" है। "ओदन" का तात्पर्य है भोग्य  
पदार्थ। परमगति वह है, जिसमें मन सहित पाँचों इन्द्रियाँ

तथा बुद्धि भी समाहित हो जाये।

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।

बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिं॥ कठो. ६/१०

तीन ज्योति-

१. हृद (वैकुण्ठ) की ज्योति

२. बेहृद (योगमाया के ब्रह्माण्ड) की ज्योति

३. परमधाम की ज्योति

पाँच साधन-

१. पञ्चाग्नि (कठो. ३/१) के सेवन से हृद की ज्योति की प्राप्ति होती है।

२. योग की पाँच भूमिकायें ही वे पाँच साधन (सीढ़ियाँ) हैं, जिनके द्वारा वैकुण्ठ, निराकार को पार

करके बेहद में प्रवेश किया जाता है। ऋग्वेद में इसे ही "पञ्च क्षितिनाम" करके वर्णन किया गया है।

३. परमधाम को प्राप्त करने के पाँच साधन इस प्रकार हैं— १. अटूट श्रद्धा और समर्पण २. अनन्य प्रेम ३. परब्रह्म की कृपा को सर्वोपरि मानना ४. विनम्रता ५. सन्तोष।

तीसरा मोक्षधाम— जीव सृष्टि के लिये— निराकार; ईश्वरीय सृष्टि के लिये— सबलिक, केवल, या सतस्वरूप ब्रह्म की आनन्दमयी भूमिका ; ब्रह्मसृष्टि के लिये— परमधाम।

(९) सप्त युञ्जन्ति रथमेक चक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।

त्रिनाभिं चक्रम्जरम्नर्व यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः॥



(अथर्व वेद ९/९/२)

एक चक्ररथ को सात वहन करते हैं। एक ही अश्व सात को धारण करता है। वह चक्र तीन से बँधा हुआ है, एवं अविनाशी है। उसी में सभी लोक स्थित हैं।

इसका रहस्य क्या है?

उत्तर- व्यष्टि में- यह शरीर ही वह चक्ररथ है, जिसमें सात साधन (पाँच ज्ञानेन्द्रिय + मन + बुद्धि) प्रयुक्त है। सात प्राणों द्वारा एक चैतन्य जीव रूपी अश्व ही इसको धारण किये हुए है।

समष्टि में- यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक चक्ररथ है, जो सात शून्यों के आधार में स्थित है। सभी प्राणियों में क्रियाशील सात प्राणों द्वारा जीव रूपी अश्व परमात्मा के आधार में चेतना प्रदान कर रहा है। शरीर और ब्रह्माण्ड

उस त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति के कार्य रूप हैं , जो अविनाशी है। उसी प्रकृति में ब्रह्म की सत्ता के आधार में सभी लोक-लोकान्तर स्थित हैं।

(१०) पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने यस्मिन्नतस्थुर्भुवनानि विश्वा। तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न च्छिदते सनाभिः॥ (अथर्व वेद ९/९/११)

पाँच अरों वाले घूमते हुए चक्र में समस्त लोक स्थित हैं। उसका अक्ष न कभी तपता है और न कभी टूटता है। पाँच अरों वाले चक्र से क्या तात्पर्य है ? उसका अक्ष क्या है?

उत्तर- पाँच अरों का चक्र यह कालमाया का ब्रह्माण्ड है। इस ब्रह्माण्ड का अक्ष वह मूल प्रकृति है , जिसका

कभी मूलतः विनाश नहीं होता।

(११) कस्मिन्नङ्गेतपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन्नङ्गे ,  
ऋतमस्याध्याहितम्। क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति  
कस्मिन्नङ्गे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम्॥ (अथर्व. १०/७/१)

स्कम्भ के किस अंग में तप विराजता है? इसके  
किस अंग में यथार्थ ज्ञान (परम् सत्य) स्थित है? इसके  
किस भाग में व्रत स्थित है और इसके किस भाग में श्रद्धा  
तथा सत्य प्रतिष्ठित है?

उत्तर— स्कम्भ (अक्षर ब्रह्म) के सत्स्वरूप में "परम  
सत्य" (ऋत) प्रतिष्ठित है तथा व्रत (सृष्टि रचना का  
संकल्प) भी वहीं पर है। बुद्धि स्वरूप केवल में श्रद्धा  
(प्रेम) निहित है। चित्त स्वरूप सबलिक में समस्त

परमाणुओं को गति देने वाली शक्ति रूप "तप" स्थित है।  
स्कम्भ में मनः स्वरूप अव्याकृत में "सत्य" प्रतिष्ठित है।

(१२) यत परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापति ससृजे  
विश्वरूपम्। कियता स्कम्भः प्रविवेश तत्र यन्न प्राविशेत  
कियत् तद् बभूव॥ (अथर्व १०/७/८)

प्रथम, मध्यम, और नीचे के लोकों में स्कम्भ  
कितने अंश से प्रविष्ट है, और स्कम्भ का जो भाग उसमें  
प्रविष्ट नहीं है, वह कितना शेष है?

उत्तर— सम्पूर्ण प्रकृति मण्डल तीन भागों में बाँटा  
जाता है— १. द्युलोक २. अन्तरिक्ष ३. पृथ्वी।

अक्षर ब्रह्म के चतुष्पाद (सत्स्वरूप, केवल,  
सबलिक, और अव्याकृत) विशुद्ध चेतन, प्रकाशमय,

और अखण्ड हैं। इनका इस प्राकृतिक जगत के प्रपञ्चों से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। अक्षर ब्रह्म (स्कम्भ) के चौथे पाद अव्याकृत का स्वाप्टिक रूप ही इस प्राकृतिक जगत में प्रकट होता है, मूलतः नहीं।

इस सम्बन्ध में अथर्व वेद १९ / ६ / १ का यह मन्त्र द्रष्टव्य है—

त्रिभिः पद्भिर्घामिरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः।

इसी प्रकार यजुर्वेद ३१ / ४ में भी कहा गया है—

त्रिपादध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।

अर्थात् अक्षरातीत परब्रह्म का स्वरूप त्रिपाद चतुष्पाद विभूति से भी परे है। अक्षर (स्कम्भ) का यह चौथा पाद ही स्वाप्टिक रूप से सृष्टि के रूप में बार-बार प्रकट होता है।

(१३-१४) तन्त्रमेके युवती विरुपे अभ्याक्रामं वयतः  
षण्मयूखम्। प्रान्या तन्तून्स्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न  
गमातो अन्तम्।। (अथर्व वेद १०/७/४२)

दो स्त्रियाँ छः खूँटी लगाकर दौड़-दौड़ कर जाल  
बुनती हैं। एक ताना लगाती है, एक बाना, पर वे पूरा बुन  
नहीं पाती हैं। वे अन्त तक नहीं पहुँचती हैं।

तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न विजानामि यतरा परस्तात्  
पुमाननेद् वयत्युद् गृणति पुनानेनद वि जभाराधि नाके।।

(अथर्व वेद १०/७/४३)

वे दोनों नाचती सी हैं। यह नहीं मालूम है कि उनमें  
कौन बड़ी है और कौन छोटी है? परन्तु एक पुरुष ही  
बुनता है और वही उकेलता है।

उत्तर- दो स्त्रियाँ- १. ज्ञान शक्ति २. क्रिया शक्ति।

ये दोनों शक्तियाँ ब्रह्म के सान्निध्य से प्रकृति में प्रकट होती हैं। पहले ज्ञान शक्ति प्रकट होती है, तत्पश्चात् क्रिया शक्ति।

छः खूटियाँ— ब्रह्म के सन्निधान से प्रकृति की साम्यावस्था भंग होने से जिन छः पदार्थों का निर्माण होता है, वे ही छः खूटियाँ हैं। इन्हीं के द्वारा सृष्टि-सर्जन का कार्य आगे बढ़ता है। वे छः पदार्थ इस प्रकार हैं—

१. महाकाश मण्डल २. महादिशा मण्डल ३. महाकाल मण्डल ४. महत् सत्व मण्डल ५. महत् रजस् मण्डल ६. महत् तमस् मण्डल।

जिस प्रकार ताना और बाना लगाकर जाल बुना जाता है, उसी प्रकार ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति द्वारा सृष्टि रचना का जाल बुना जाता है।

इस क्रिया को नाचने की संज्ञा दी गयी है।

ऋग्वेद में इसे इस रूप में कहा गया है—

अत्र वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत्।

यद् देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वता॥

(ऋग्वेद १०/६२/६)

किन्तु, इन दोनों शक्तियों की क्रिया ब्रह्म के संकल्प के बिना सम्भव नहीं है, इसलिये उस अविनाशी अक्षर पुरुष को ही सृष्टि का जाल बुनने वाला और प्रलय करने वाला कहा गया है।

(१५) द्वादश प्रधयश्च क्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क  
उतच्चिकेत। तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ् कवः षष्टिश्च  
खीला अविचाचला ये॥ (अथर्व वेद १०/८/४)



एक चक्र में १२ पुट्टियाँ हैं। ग्रीष्म, वर्षा, और शीत—  
ये तीन नाभि हैं। ३६० कीलें चल-अचल रूप से लगी  
हैं। इसका रहस्य क्या है?

उत्तर— वर्ष ही वह चक्र है, जिसके १२ महीने १२  
पुट्टियाँ हैं। ग्रीष्म, वर्षा, और शीत ये तीन नाभि हैं। वर्ष  
के ३६० दिन ही ३६० कीलों के रूप में कहे गये हैं।

(१६) इदं सवितर्वि जानीहि षड यमा एक एकजः।

तस्मिन् हापित्वमिच्छन्ते य एषामेक एकजः॥

(अथर्व वेद १०/८/५)

छः जोड़े हैं और एक स्वयं उत्पन्न है। उस एक में ही  
सब समा जाते हैं। वे कौन से छः जोड़े हैं, और कौन सा  
एक है, बताइये?

**उत्तर-** अधिदैवत पक्ष में - छः ऋतुओं (ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, तथा वसन्त) को ही यहाँ छः जोड़े कहा गया है, क्योंकि प्रत्येक ऋतु दो माह की होती है। ये सभी छः जोड़े एक ही सूर्य पर आश्रित रहते हैं। इसी प्रकार अध्यात्म पक्ष में छः जोड़े (आँख, कान, नासिका, जिह्वा, हाथ, पैर) स्वयंभू जीव में समाहित रहते हैं अथवा ५ ज्ञानेन्द्रिय + मन भी यम जा सकते हैं, जो स्वयं जीव में समाहित हैं।

(१७) एक चक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरोनि पश्चा। अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्र पतद् बभूवुः॥ (अथर्व वेद १०/८/७०)

हजार (अनन्त) अरों का एक चक्र है। उसके आधे

में विश्व है। बाकी आधा कहाँ है?

उत्तर— अनन्त ग्रह-नक्षत्रों से युक्त कालमाया (हृद) का ब्रह्माण्ड रूपी यह चक्र अक्षर ब्रह्म के मन स्वरूप अव्याकृत का स्वाप्निक स्वरूप है। इसका मूल अव्याकृत में है।

तू कहा देखे इन खेल में, ए तो पड़यो सब प्रतिबिम्ब।

प्रतिबिम्ब पांचों तत्व मिल, सब खेलत सुरत के संग॥

किरंतन ६/२

इस स्थूल और सूक्ष्म सृष्टि का मूल "कारण और महाकारण प्रकृति" (महामाया) में निहित है, जबकि कारण, महाकारण (महाशून्य) का मूल अव्याकृत में स्थित है। अव्याकृत में सृष्टि रचना का मूल होने के कारण इस त्रिगुणात्मक जगत को आधे विश्व की संज्ञा दी

गयी है। शेष इसका आधा अव्याकृत में निहित है।

(१८) तिर्यग्बिलश्चमसः ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो  
निहितं विश्वरूपम्। तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य  
गोपा महतो बभूवुः॥ (अथर्व वेद १०/८/९)

एक तिरछे मुँह का लोटा है। उसके ऊपर पेंदा है।  
उसमें नाना रूप यश रखा है। उसके किनारे-किनारे  
सात ऋषि हैं। वे उसके रखवाले हैं। इस पहेली का  
रहस्य क्या है?

उत्तर- यह शिर ही वह चमस या पात्र है, जिसका  
मुख तिरछे खुलता है और पेंदा अर्थात् कपाल ऊपर है।  
उसमें यशोरूप प्राण हैं। उस पात्र के किनारे-किनारे  
सात प्राण या इन्द्रिय रूपी सात ऋषि हैं। दो कान

(गौतम, भारद्वाज), दो चक्षु (विश्वामित्र, जमदग्नि), दो नासिका (वशिष्ठ, कश्यप), और मुख (अत्रि ऋषि)। इस प्रकार ये सात ऋषि विराजते हैं, जो इसे गोपा (पहरेदार) के समान घेरे हुए हैं।

(१९) या पुरस्ताद् युज्यते या च पश्चाद् या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः। यया यज्ञः प्राड.तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा स ऋचाम्॥ (अथर्व वेद १०/८/१०)

एक ऋचा है, जिसमें उस अर्चनीय शक्ति का वर्णन है, जो आगे-पीछे सब ओर से जुड़ती है। वह यज्ञ को प्रारम्भ करती है। बताइये वह कौन सी है?

उत्तर- इसका उत्तर गोपथ ब्राह्मण १/१/२२ में दिया गया है। ऋग्वेद की एक ऋचा में उस अर्चनीय शक्ति

का वर्णन है। वह ऋचा है-

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त समासते॥

ऋग्वेद १/१६४/३९

(२०) उत्तैषां पितोत वा पुत्र एषामुत्तैषां ज्येष्ठः उत वा कनिष्ठः। एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः॥ (अथर्व वेद १०/८/२८)

एक देव है, जो पिता भी है तथा पुत्र भी है। वह सबसे बड़ा है तथा सबसे छोटा भी है। बताइये वह कौन है?

उत्तर- जीव।

(२१) अविर्वे नाम देवत ऋतेनास्ते परीवृता। तस्या  
रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः॥

(अथर्व वेद १०/८/३१)

परम सत्य से आवृत्त एक (अवि) भेड़ या सर्वरक्षक शक्ति है, जिसके रोचक रूप से सभी वृक्ष और लतायें हरी-भरी रहती हैं। इसका रहस्य क्या है?

उत्तर- परब्रह्म की आनन्द शक्ति (आह्लादिनी शक्ति) का ही इसमें अलंकारिक रूप से वर्णन किया गया है, जिनकी अनन्त शोभा, प्रेम, और आनन्द से परमधाम का एक-एक कण ब्रह्मानन्द में निमग्न है।

(२२) गौरिन्ममाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा  
चतुष्पदी। अष्टापदी नवपदी बभ्रुवुषी सहस्राक्षरा भुवनस्य

पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति॥

(अथर्व वेद ९/१०/२१)

वह ब्रह्म शक्ति किस प्रकार एकपदी , द्विपदी, चतुष्पदी, अष्टापदी, नवपदी, तथा असंख्य रूपों में है?

उत्तर- अखण्ड ब्रह्मधाम में अद्वैत स्वरूप होने से ब्रह्मशक्ति को एकपदी कहा गया है, किन्तु लीला रूप में युगल स्वरूप होने से वह द्विपदी है। बेहद मण्डल के चारों पदों (अव्याकृत, सबलिक, केवल, और सत्स्वरूप) के रूप में वह चतुष्पदी है। स्वाप्टिक रूप में वह अष्टपदी (पञ्च तत्व + मन + बुद्धि + अहंकार) या अपरा, तथा नवपदी (अपरा + परा) कहलाती है। उसके द्वारा ही बेहद तथा हृद में अनन्त रूपों में लीला होती है, इसलिए उसे "सहस्राक्षरा" (अनन्त शक्तिरूपा) भी कहते हैं।



(२३) दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा। यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं सा वा अद्य महद वदेत॥

(अथर्व वेद ११/८/३)

सृष्टि के प्रारम्भिक काल में एकसाथ उत्पन्न हुए वे कौन से १० देव हैं, जिनका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर लेने वाला ही उस महान ब्रह्म का उपदेश कर सकता है?

उत्तर— ऐतरेयोपनिषद् में इस प्रसंग के सम्बन्ध में विस्तार से वर्णन है। संक्षेप में विराट् पुरुष (हिरण्यगर्भ) की दस इन्द्रियाँ ही वे दस देव हैं, जिनसे अग्नि, वायु, आदित्य, दिशा, वनस्पति, चन्द्रमा, मृत्यु, तथा जल इत्यादि देवों (ब्रह्माण्ड के आधारभूत तत्वों) की उत्पत्ति हुई।

(२४) तिस्रो दिवस्तिस्त्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि  
चतुरः समुद्रान्। त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृतं आप आहुस्तास्त्वा  
रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्धिः॥

(अथर्व वेद १९/२७/३)

तीन प्रकार के द्युलोक या तेज, तीन प्रकार की पृथ्वी, तीन प्रकार के अन्तरिक्ष, चार प्रकार के समुद्र, तीन प्रकार के स्तोम, और तीन प्रकार के जल कौन-कौन से हैं?

उत्तर- तीन द्युलोक- द्युलोक (प्रकाशमयी लोक) में एक क्रान्ति वृत्त है, जिसमें सूर्य, पृथ्वी सहित चन्द्रमा तथा ग्रह गतिशील हैं। इस क्रान्तिवृत्त को २८ नक्षत्रों में बाँटा गया है।

राशियों की दृष्टि से इस क्रान्तिवृत्त के १२ भाग

किये जाते हैं। द्युलोक का एक भाग है क्रान्तिवृत्त। क्रान्तिवृत्त के उत्तर में द्युलोक का उत्तरी भाग है और दक्षिण में दक्षिणी भाग। इस प्रकार द्युलोक के ये तीन भेद हुए।

तीन पृथ्वी- भूमध्य रेखा के २३.५ अंश उत्तर और २३.५ अंश दक्षिण में जो वृत्त फैला हुआ है, वह द्युलोक के क्रान्तिवृत्त का अनुरूपी है। उस अनुरूपी वृत्त के उत्तर में जो विभाग है, वह उत्तरी विभाग तथा दक्षिण में स्थित विभाग दक्षिणी विभाग कहलाता है।

तीन अन्तरिक्ष- पृथ्वी और द्युलोक की तरह ही अन्तरिक्ष के भी तीन भेद होते हैं।

चार समुद्र- चार दिशाओं में ये पृथ्वी समुद्र से घिरी हुई है। इसलिए इसके चार भेद होते हैं- १. पूर्व समुद्र

२. पश्चिम समुद्र ३. उत्तर समुद्र ४. दक्षिण समुद्र।

त्रिवृत स्तोम- संगीत के तीन अंश हैं। ऋचा, स्तोम, और साम। संहिताओं में ऋचायें या मन्त्र दिये गये हैं। इन ऋचाओं की पुनरावृत्तियाँ गाने के लिये की जाती हैं, जिससे इनका गेय रूप बनता है। इसे स्तोम कहते हैं। जिस स्वर या राग में स्तोम गाया जाता है, उसे साम कहते हैं। स्तोम कई प्रकार के होते हैं। जैसे त्रिवृत्त स्तोम, पञ्चदश स्तोम, त्रयस्त्रिंश स्तोम, एकविंश स्तोम। इनमें से त्रिवृत्त स्तोम गायत्री छन्द वाले तीन मन्त्रों द्वारा निर्मित होता है।

तीन प्रकार के जल- जल भी तीन प्रकार के होते हैं- १. भूमि गर्भस्थ जल, जैसे कि चश्मों तथा कूपों का जल २. नदियों और समुद्रों का जल ३. अन्तरिक्षस्थ जल।

अध्यात्म में- हृद (कालमाया का ब्रह्माण्ड), बेहद (योगमाया का ब्रह्माण्ड), तथा परमधाम में तीन प्रकार का तेज है। हृद का तेज जड़ अग्नि तत्व का है। बेहद का तेज चेतन, अद्वैत, शुक्रमयी (नूरमयी) है, तथा परमधाम का तेज स्वलीला अद्वैत, चेतन, अनन्य प्रेममयी है।

इसी प्रकार तीनों ब्रह्माण्डों की पृथ्वी, अन्तरिक्ष, और जल की भी स्थिति है। परमधाम की पृथ्वी, अन्तरिक्ष, और जल भी नूरी (आदित्य वर्ण, शुक्र वर्ण), अनन्य प्रेममयी, तथा चेतन ब्रह्ममयी है। योगमाया के ब्रह्माण्ड की पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा जल भी हृद के विपरीत चेतन तथा अद्वैतमयी है। इसके विपरीत कालमाया के ब्रह्माण्ड की पृथ्वी, अन्तरिक्ष, तथा जल त्रिगुणात्मक जड़ हैं, एवं नश्वर हैं।

परमधाम में चिद्धन शक्ति के चार समुद्र - १. तेज का

सागर २. निज स्वरूप (युगल) की शोभा का सागर ३. ज्ञान का सागर ४. कृपा का सागर माने जाते हैं। इसी प्रकार आनन्द शक्ति के भी चार सागर माने जाते हैं— १. आत्माओं की शोभा का सागर २. एकरूपता (एकदिली) का सागर ३. अनन्य प्रेम का सागर ४. मूल सम्बन्ध का सागर। परमधाम की प्रत्येक वस्तु चैतन्य, नूरमयी, प्रेममयी, और स्वलीला अद्वैतमयी है।

इसे भी संक्षेप में चार सागरों के रूप में परिभाषित कर सकते हैं।

(२५) त्रीन्नाकांस्त्रीन् समुद्रांस्त्रीन् बध्नांस्त्रीन् वैष्टपान्।  
त्रीन् मातरिश्वनस्त्रीन्सूर्यान् गोमृन् कल्पयामि ते॥

(अथर्व वेद १९/२७/४)

तीन सुखमय लोक, तीन समुद्र, तीन महान पदार्थ,  
तीन विशेष तापों से छूटने का सुख, तीन वायु तथा तीन  
सूर्य कौन-कौन से हैं?

उत्तर- तीन सुखमय लोक-

१. वैकुण्ठ, निराकार
२. बेहद
३. परमधाम

तीन समुद्र-

१. हृद का मोह सागर
२. बेहद का अद्वैत नूर (आदित्य स्वरूप) सागर
३. परमधाम का स्वलीला अद्वैत एकरूपता  
(वाहेदत) का सागर

तीन महान पदार्थ (स्वरूप)–

१. आदिनारायण (क्षर पुरुष)
२. अक्षर ब्रह्म (अक्षर पुरुष)
३. अक्षरातीत (उत्तम पुरुष)

तीन विविध वैष्टप (दुःखों से मुक्ति)– आधिदैविक, आधिभौतिक, और आध्यात्मिक कष्टों से रहित होना ही त्रिविध वैष्टप है।

तीन प्रकार की वायु–

१. प्रकृति या सूक्ष्म प्राण (कारण)
२. तन्मात्रिक प्राण (सूक्ष्म)
३. भौतिक प्राण (सामान्य)



तीन प्रकार के सूर्य-

१. महत्तत्व (कारण)
२. मन (सूक्ष्म)
३. भौतिक सूर्य (स्थूल)

अध्यात्म पक्ष में-

१. परमधाम का सूर्य- अक्षरातीत
२. बेहद का सूर्य- अक्षर ब्रह्म
३. हृद का सूर्य- आदिनारायण

या १. भौतिक सूर्य २. शरीर का सूर्य (जीव) ३.  
समस्त ब्रह्माण्डों का सूर्य- अविनाशी ब्रह्म।

**इसके साथ ही यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ**